ओ३म्-तत्-सत् ॥

वैराग्यशतकम् ॥

[म]हाराजेन भर्तृहरिणा प्रणीतम्

[...]कारमत्या भीमसेनशर्म्मकृतभावार्थेन तच्छिष्यश्यामलालशर्मकृतव्याख्यया चोपेतम् ॥

बा० [...]र्णसिंह वर्म्मा प्रबन्धकर्त्ता
ने
सरस्वतीयन्त्रालय
इटावा
में
छपाकर प्रकाशित किया

माघशुक्ल

संवत् १९५३ ता० ८।२।९७ ई०

प्रथमवार १०००] [मूल्य ।)॥

[...] और [...]

[...]रामुन्मत्तभूत [...] ॥

निवेदनम्

कुशलेन येन, भाष्यं मनोवैं विहितं यथार्थम्
...मा स गुरुर्गुरूणां, श्रीभीमसेनो बुधवृन्दवन्द्यः॥
भाष्यं व्यधायि सरलं प्रतिपक्षखण्ड-
मुज्ज्वालमौपनिषदं सततं वरेण्यम्।
प्रामादरो जगति सम्प्रति हन्दि सम्यग्,
वर्वर्त्ति धीरविदुषां कसितानि कुर्वन्॥
महाशयः स श्रुतिपारदृश्वा, वाग्वेश्मधुर्य्यो दमयन्स्वयुक्त्या।
विपक्षिजातं दृढयौक्तिकेन, पत्रेण केनापि विराजते कौ॥
गुरोराज्ञां पुरस्कृत्य, श्यामलालेन शर्म्मणा।
आरभ्यते मया कर्त्तुं, भाषाविवृतिरस्य कम्॥
गुरुणा गुरुकल्पेन, प्रसिद्धेन महात्मना।
तात्पर्य्यं स्वयमालेखि पद्यानां हि सतां मते॥

सब महाशयों को विदित हो कि महाराजा भर्तृहरि जी यद्यपि शैव थे तथापि उन के विचार ज्ञान वैराग्य आदि की ओर अच्छे प्रकार झुके होने से उन के उपदेश मनुष्य के विशेष कल्याणकारी अवश्य हैं। किसी निज मत में ही रह कर मनुष्य अच्छा शुद्ध धर्मनिष्ठ हो यह नियम नहीं। तदनुसार राजा भर्तृहरि जी अच्छी कक्षा के उच्च पुरुष थे यह अवश्य मन्तव्य है। यद्यपि शैवमत वेदानुकूल नहीं है तथापि हमारा उद्देश इस पुस्तक का टीका छपाने में मत शोधन न होने से ज्यों का त्यों ही श्लोकों का अर्थ छपा दिया है। आर्यों की बिगड़ी दशा को सभी लोग जानते हैं कि इस का कारण विषयासक्ति आदि का अधिक बढ़ जाना भी अवश्य है। और ज्ञान वैराग्य की ओर ध्यान जाने से मनुष्य कुछ २ चेतता है अपने आपे में आ सकता अपने हित अहित को शोचने और सबकाल में कल्याणकारी धर्म की ओर चलने की योग्यता प्राप्त कर सकता है इस से ज्ञान वैराग्य का धर्म के साथ बड़ा सम्बन्ध समझ कर इस पुस्तक का गुरु ...की आज्ञानुसार भाषा वार्त्तिक मैंने किया और श्रीमान् गुरुवर्य भीमसेन शर्मा ...नीय धारा में श्लोकों का भावार्थ लिखा है। आशा है कि इस को प... ...हाशय एकाग्रचित्त ...गे शोचेंगे स्वयं चेतेंगे अन्यों को चितावेंगे ... और मेरा श्रम सफल करेंगे। ओ३म्।

...लाल शर्मा

वैराग्यशतकम् ॥

चूडोत्तंसितचारुचन्द्रकलिकाचञ्चच्छिखाभास्वरो,
लीलादग्धविलोलकामशलभः श्रेयोदशाग्रे स्फुरन् ।
अन्तः स्फूर्जदपारमोहतिमिरप्राग्भारमुच्चाटयँ,
श्चेतःसद्मनि योगिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः ॥१॥

राजर्षिप्रवर भर्तृहरि जी वैराग्यशतक के आरम्भ में अपने इष्ट देव शिव को प्रणाम करते हैं ।

केश समुदाय में आभूषण रूप चन्द्रकला की देदीप्यमान किरणों से शोभित, एवं लीला से पतङ्गरूप चञ्चल कामदेव को जलाने वाले, लोक कल्याणार्थ प्रकट हुए तथा भीतरी प्रबल अपार मोहरूप अज्ञान को नष्ट करते हुए ज्ञान के प्रकाशक महादेव योगियों के चित्तरूप गृह में प्रकृष्टता से विराजमान होते हैं ॥

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥२॥

शास्त्र जानने वाले मत्सर से ग्रसे हुए हैं, समर्थ लोग सामर्थ्य के मद से दूषित हैं, शेष रहे पुरुष अज्ञान से घायल किये हुए हैं अतः सुभाषित अङ्ग में ही जीर्ण हो जाता है ॥

तात्पर्य यह है कि राजा भर्तृहरि जी के समय से प्रायः ऐसी दशा है कि ठीक तत्त्व बात के सुनने समझने वाले बहुत कम मिलते हैं किन्तु सर्वथा अभाव दिखाना इष्ट नहीं है ॥

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलं,
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः ।
महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषया,
महान्तो जायन्ते व्यसनमिव दातुं विषयिणाम् ॥३॥

मैं संसार सम्बन्धी कर्त्तव्य को दृढ़ सुख [illegible] नहीं देखता और [illegible] हुए मुझ को पुण्यों का फल भी भय उत्पन्न [illegible] बड़े प्रय[illegible] ॥

से अधिक काल .रके संचित किये हुए बड़े विषय भी विषयी पुरुषों को दु
देने के लिये ही उत्पन्न होते हैं ॥

प्रयोजन यह है कि संसार में प्रायः लोग संसारी धनैश्वर्य वा का
भोगादि की अधिक अभिलाषा से ही पुण्य धर्म का भी संचय करते हैं
काम्य कर्मों का फल स्वर्गादि नामक विषयसुख भी उन को बड़ा २ अच्छा
लता है परन्तु विषयसुख में दुःख भी अवश्य मिला ही रहता है बड़े २ सुखे
साथ बड़े २ दुःख भी रहते वा आते हैं इस से संसार में केवल सुख ही मि
सम्भव नहीं है ॥

उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो,
निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन संतोषिताः ।
मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः,
प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्च माम् ॥४॥

कोश (खज़ाना) मिलने की आशा से भूमि खोदी, रसायन सिद्ध होने
निमित्त पर्वत के अनेक धातु फूंक डाले, द्वीपान्तर से धन लाने की इच्छा त
द्वीपान्तर के विजय की अभिलाषा से समुद्र के भी पार गये, बड़े प्रयत्न से राजा
को भी सेवा द्वारा सन्तुष्ट किया एवं मन्त्र सिद्धि में तत्पर हुए मन से मरघट
अनेक रात्रियां वितायीं परन्तु मुझ को कानी कौड़ी भी न प्राप्त हुई इस लि
हे तृष्णा ! अब मुझ को छोड़ ॥

प्रयोजन यह है कि तृष्णा की तरङ्गों से बचने बिना मनुष्य का उद्धा
नहीं होता । गृहस्थ दशा में धनादि का उपाय करता हुआ भी अधिक तृष्ण
का त्याग करे तो अच्छा, परन्तु तृष्णा का सर्वथा त्याग गृहस्थ नहीं कर सकत
इसी से विरक्त के लिये तृष्णा का त्याग अत्यावश्यक है ।

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चित्फलं,
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला ।
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशङ्कया काकवत्,
तृष्णे ! दुर्मतिपापकर्मनिरते नाद्यापि संतुष्यसि ॥ ५ ॥

मैंने अनेक दुर्गम देशों में [illegible] किया, परन्तु कुछ भी फल न पाया, जाति
के उचित [illegible] छोड़ कर पराई सेवा की वह भी निष्फल गई

दुः हुई बुद्धि से दूसरों के घर में काक के समान सत्कार रहित भोजन किया का भी कुछ वास्तविक फल न मिला परन्तु दुर्मति से पाप कर्म में डूबी हुई तृष्णा ! तू अब तक भी सन्तुष्ट नहीं होती ॥

परमार्थ की ओर जब मनुष्य झुकता है तब उस का विचार ऐसा होता । संसारी मनुष्य तो देशाटनादि द्वारा धनसंचय कर के इष्टसिद्धि मानते ही पर धनोपार्जनादि स्वार्थसाधन के लिये दौड़ने वालों को सब दशाओं और कालों में दुःख नहीं छोड़ता । इस लिये गृहाश्रम के समय भी कुछ २ परमार्थ की ओर झुके तो दुःख अधिक नहीं व्यापते ॥

खलोल्लापाः सोढाः कथमपि तदाराधनपरै,
र्निगृह्यान्तर्बाष्पं हसितमपि शून्येन मनसा ।
कृतश्चित्तस्तम्भः प्रहसितधियामञ्जलिरपि,
त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्त्तयसि माम् ॥ ६ ॥

खल पुरुषों की सेवा करने में तत्पर हुए हम ने खलों के कटु वचन किसी प्रकार सहे और कटु वचनों के सुनने से उठे रोदन के पूर्वरूप गहरे श्वास को भीतर ही रोक कर बिना मन के हंसा किये तथा सुक्ष दीन को देख कर हंसते हुए खलों के आगे मैंने चित्त को रोका और हाथ जोड़ प्रणाम भी किया परन्तु हे व्यर्थ आशा ! अब मुझ को इस से भी अधिक क्यों (क्या) नचाती है ॥

संसार में अनेक कृपण कञ्जूस धर्म कर्म वा विद्या के महत्त्व को न जानने वा न मानने वाले नीच प्रकृति अनार्य भी धनाढ्य होते और धर्म में स्थिर सुशील विद्वान् आर्य भी अनेक निर्धन होते हैं तो नीच प्रकृति धनियों की शुश्रूषा (खुशाम) भी निर्धन आर्यों को धन की आशा से करने पड़ती है इस से परमार्थ की ओर ध्यान दें तो ऐसे दुःख मनुष्यों को भोगने न पड़ें सन्तोष रहे तो धनाभाव के दुःख न सतावें ॥

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं,
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ।
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते,
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्॥ ७ ॥

सूर्य्य के उदय अस्त होने से दिनदिन आयु घटता जाता है अनेक कार्यों के भार से बढ़े हुए व्यापारों से जाता हुआ काल नहीं जानपड़ता और जन्म, वृद्धपन, विपत्ति तथा मरण देख कर भी त्रास (भय) उत्पन्न नहीं होता अतः प्रतीत होता है कि यह संसार अज्ञानयुक्त भूलरूप मद्य को पीकर मतवाला हो रहा है ॥

मनुष्य को चाहिये कि अपने पर आनेवाली अनेक विपत्ति और जन्म मरणादि के भय को सदा शोचता रहे । भूल में पड़ा हुआ समय न वितावे । बड़े २ मृत्यु आदि के विकराल भय से बचाने वाला वेदोक्त धर्म है उस को न भूले ॥

दीनादीनमुखैः सदैव शिशुकैराकृष्टजीर्णाम्बरा,
क्रोशद्भिः क्षुधितैर्नरैर्न विधुरा दृश्येत चेद् गेहिनी ।
याच्ञाभङ्गभयेन गद्गदगलत्त्रुट्यद्विलीनाक्षरं,
को देहीति वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी जनः ॥ ८ ॥

स्वयं दीन तथा रोते हुए दीन बालकों से फटे कपड़ों में पकड़ी हुई एवं घर के भूखे मनुष्यों से दुःखित हुई स्त्री को यदि पुरुष न देखे तो धीर पुरुष को चाहिये कि अपने जले हुए पेट के लिये मांगना व्यर्थ जाने [और मांगने पर धमकाये जाने] के भय से गिड़गिड़ाते हुए तथा टूटे हुए अक्षर वाले "कुछ दीजिये" इस वाक्य को न बोले ॥

विषय सुखभोग के लालच से मनुष्य विवाह करता जब स्त्री पुत्रादि के पालन पोषणार्थ धन अन्नादि नहीं मिलते तो मांगने आदि में बड़े २ कष्ट थोड़े सुख के लिये भोगता और उसी कीचड़ में पड़ा जन्म विता देता है इस लिये विषयसुखभोग की अगाध तृष्णा को धीरे २ कमती करे तभी कुछ कल्याण हो सकता है ॥

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुषबहुमानो विगलितः,
समानाः स्वर्य्याताः सपदि सुहृदो जीवितसमाः ।
शनैर्यष्ट्योत्थानं घनतिमिररुद्धे च नयने,
अहो धृष्टः कायस्तदपि मरणापायचकितः ॥ ९ ॥

धातुओं के क्षीण हो जाने से विषयभोग की इच्छा नहीं रही, पुरुषों के बीच में सत्कार भी नष्ट हो गया, तुल्य अवस्था वाले साथी भी मरगये, जो इष्ट

मित्र थे वे भी समाप्त हुए और आप लकड़ी टेक कर धीरे से उठने लगे आंखों के आगे भी अंधेरी छागई पर तो भी यह शरीर ऐसा निर्लज्ज है कि अपना मरण सुन कर चकित (चौकन्ना) हो जाता है ॥

पहिले जन्मों में जो मरण समय के महाभयंकर कष्ट भोगे हैं उन का सूक्ष्म संस्कार सामान्य स्मरण मनुष्यादि को बना रहता है इसी से मरण का नाम सुन कर सभी प्राणी अधिक डरते हैं । मृत्यु का महाभय तत्त्वज्ञान के साथ परमार्थ की ओर झुकने से ही छूट सकता है संसार में इस महाभय से बचने के लिये अन्य कोई भी उपाय नहीं है इस से तत्त्वज्ञान होने का उपाय करो ॥

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुत्कल्पितं,
व्यालानां पशवस्तृणाङ्कुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः ।
संसारार्णवलङ्घनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां,
यामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः ॥१०॥

विधाता ने सर्पों के लिये हिंसारहित विना प्रयत्न प्राप्त होने वाला वायु भोजनार्थ बनाया है और पशुओं के लिये तृणादि खाने को तथा भूमि सोने को नियत की है । जिन की बुद्धि संसाररूपी समुद्र लांघने को समर्थ है उन मनुष्यों की ऐसी वृत्ति बनाई है कि जिस के खोजने में सब गुण समाप्त हो जाते हैं ॥

तिर्यग् योनि के प्राणी धर्मद्वारा मुक्ति (परमार्थ सिद्धि) का उपाय नहीं कर सकते यह काम केवल मनुष्यजाति का है इस लिये मनुष्यों को चाहिये कि वे अपने सब जन्म भर के पुरुषार्थ को खाने पीने आदि अनित्य सुख के लिये ही पूरा न करदें किन्तु चौथे आश्रम का ध्यान रख कर कुछ काल परमार्थ के लिये भी श्रम करें ॥

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत् संसारविच्छित्तये,
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः ।
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं,
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥ ११ ॥

संसार से छुटने के लिये ईश्वर के पदकमल का विधिवत् ध्यान नहीं किया एवं स्वर्गद्वार खुलने के लिये प्रबल धर्म का संचय भी नहीं किया और स्त्री के

पुष्ट पयोधर तथा जङ्घा स्वप्न में भी आलिङ्गित नहीं किये अतः हम माता के यौवन (जवानी) रूप वन के काटने के निमित्त कुल्हाड़े ही उत्पन्न हुए ॥

मनुष्य यदि पहिले आश्रम में विद्या धर्म का संचय, बीच की द्वितीय (२५—५०) अवस्था में संसार का विषयसुखभोग न भोगे, तृतीय अवस्था में तपस्या द्वारा धर्म का अधिक संचय और चौथी वृद्धावस्था में संसार से छूट मुक्ति के लिये उपाय न करे तो उस का जन्म निरर्थक ही जानो ॥

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता, स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव याता, स्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥१२॥

विषयों को हमने नहीं भोग पाया परन्तु विषयों ने हमारा भुगतान कर दिया हम तप न तपे पर तप ही ने हमें तपा डाला, काल व्यतीत नहीं हुआ और अवस्था बीत गई तृष्णा (चाह) पुरानी नहीं हुई पर हम पुराने हो गये ॥

जब तत्वज्ञान की ओर ध्यान देके शोचें तो प्रतीत होता है कि भोग कभी पूरे नहीं होते " नवेन्द्रियाणां भोगाभ्यासेन वैतृष्ण्यं कर्त्तुं शक्यं यतो भोगाभ्यासमनुविवर्धन्ते रागाः कौशलानि चेन्द्रियाणामिति " विषयभोग के अभ्यास से इन्द्रियों की तृष्णा पूरी नहीं होती, जैसा २ विषयों को अधिक भोगता जाता है वैसा ही उन २ विषयों का अनुराग बढ़ता और भोग में इन्द्रिय चतुर होते जाते हैं अन्त में इन्द्रिय और शरीर शिथिल होकर नष्ट हो जाता है विषयभोग फिर जन्मान्तर में मिल जाते हैं । इस लिये विषयभोग की अगाध तृष्णा को शिथिल कर भविष्यत् में अपने कल्याण के लिये मनुष्य को अवश्य उपाय करना चाहिये ॥

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न सन्तोषतः,
सोढा दुःसहशीतवाततपनाः क्लेशान्न तप्तं तपः ।
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शम्भोः पदं,
तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वञ्चितम् ॥ १३ ॥

क्षमा तो की पर अशक्तता से की, गृह के योग्य सुख को तो छोड़ा परन्तु सन्तोषपूर्वक घर के सुख का त्याग न किया, शीत, वायु तथा घाम के दुःसह दुःख को तो सहा पर क्लेश को सह कर तप न किया, बड़े संयम पूर्वक धन का रात्रि दिन ध्यान किया पर सुखदायक ईश्वर के चरणों का ध्यान न किया ।

वही २ कर्म हम ने किया जिस का स्मृत्यादि ग्रन्थों में उन २ ग्रन्थकार ऋषि मुनियों ने स्वर्गादि विषयसुख सम्बन्धी फल का लालच देकर वर्णन किया है।

मनुष्य को चाहिये कि संसार के बड़े २ फलभोग के लालच से केवल कर्मकाण्ड में ही जन्म भर न लगा रहे किन्तु अपना परमकल्याण चाहता हो तो परमार्थ की ओर झुकी तत्त्वदृष्टि से सोचता हुआ सम, दम, तितिक्षा, उपरति, सन्तोष आदि को अपना परम कल्याणकारी मान कर, ध्यान देता रहे और हृदय में शान्ति आदि को स्थान देवे॥

बलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितं शिरः ।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥ १४ ॥

मुख का चमड़ा सिकुड़ गया, शिर के केश श्वेत होगये, शरीर के सब अङ्ग ढीले पड़ गये पर एक तृष्णा ही तरुण होती जाती है॥

शरीर तो समय पाकर वृद्ध शिथिल जीर्ण होता जाता पर तृष्णा सदा तरुण होती जाती है। केवल परमार्थ सम्बन्धी तत्त्वज्ञान के हृदय में अवकाश पाने से तृष्णा शान्त होती है॥

येनैवाम्बरखण्डेन संवीतो निशि चन्द्रमाः ।
तेनैव च दिवाभानुरहो दौर्गत्यमेतयोः ॥ १५ ॥

जिस आकाश के भाग (हिस्से) से रात्रि में चन्द्रमा संवद्ध चलायमान रहता है उसी आकाश मार्ग से दिन में सूर्य भागा करता है। आश्चर्य है कि इन दोनों की बड़ी दुर्गति होती है॥

धन वा काम सम्बन्धी जिन २ सुखभोगों के लोभ से अनेक मनुष्यों को बड़ी २ विपत्ति भोगते देखते भी हैं तो भी उन के विषयभोग पूरे होने पर अन्य लोग उन्हीं विषयों के लोभ से विपत्ति भोगने लगते हैं॥

अवश्यं यातारश्चिरपरिगृहीताश्च विषया,
वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममून् ।
व्रजन्तः स्वातन्त्र्यादतुलपरितापाय मनसः,
स्वयं त्यक्ता ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ॥१६॥

बहुत काल से ग्रहण–सेवन किये विषय मरण समय अवश्य छूटेंगे फिर विषयों के छूटने में कौनसा भेद है जो मनुष्य इन को स्वयं नहीं छोड़ देता। क्योंकि

यदि विषय स्वयं हम को अन्त में छोड़ेंगे तो मन को बड़ा सन्ताप देंगे और यदि मनुष्य विषयों को आप छोड़ देगा तो अनन्त शान्ति सुख को प्राप्त होगा ॥

रूपादि विषय शरीर रहने तक सर्वथा किसी से नहीं छूट सकते इसलिये विषय भोग से चित्त की फसावट न रहना ही विषयों का छोड़ना है जब चित्त में फसावट न रहेगी तब ही वह मनुष्य शरीर इन्द्रियों से विषय में लिप्त न होगा और विरक्त वा निर्विण्ण कहावेगा ॥

विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति तृषा,
परिष्वङ्गे तुङ्गे प्रसरतितरां सा परिणतिः ।
जराजीर्णैश्वर्य्यग्रसनगहनाक्षेपकृपण,
स्तृषापात्रं यस्यां भवति मरुतामप्यधिपतिः ॥ १७ ॥

विवेक का विकाश होने से तृष्णा शान्त हो जाती है और तृष्णा का परिणाम अन्त हो जाता है तृष्णा का आलिङ्गन करने से उस की अतिवृद्धि वा फैलाव होता है । बुढ़ापे से जीर्ण हुए ऐश्वर्य्य के नाश के रोकने में असमर्थ इन्द्र भी तृष्णा का पात्र बनता है ॥

इसलिये तृष्णा का समागम छोड़ कर विवेक द्वारा तृष्णा को धीरे २ शान्त करने से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है ॥

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकलो,
व्रणी पूतिक्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः ।
क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरजकपालार्पितगलः,
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि च हन्त्येव मदनः ॥ १८ ॥

जिस के कान पूंछ कटे हैं घाव हो रहा है, पीव बहता है, देह में अनेक कीड़े पड़े हैं, और फूटी हंडी का घेरा गले में फस रहा है ऐसा दुर्बल काना लंगड़ा भूखा बूढ़ा कुत्ता भी संगम की अभिलाषा से कुत्ती के पीछे भागता है । इस से सिद्ध हुआ कि कामदेव मरे हुए को भी अपने बाण से घायल किये विना नहीं रहता ॥

संसार में काम के वेग को रोकना सब से अधिक कठिन है यदि कोई इस परीक्षा में उत्तीर्ण होजावे तो निस्सन्देह वह परमार्थ नामक निःश्रेयस सुख का

अधिकारी अवश्य हो सकता है। सो यदि मन को इतना वश में कर सके कि कामभोग के लिये उत्तम से उत्तम साधन विद्यमान हों तथा विशेष एकान्तादि के कारण लोकापवादादि का भय भी न हो और कामाग्नि न भड़के तो वह काम का जीतने वाला माना जा सकता है ॥

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं,
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम् ।
वस्त्रं च जीर्णशतखण्डमयी च कन्था,
हा ! हा !! तथापि विषया न परित्यजन्ति ॥ १९ ॥

भिक्षा मांगकर भोजन करते हैं वह भी रसरहित तथा एक बार मिलता है, भूमि पर ही सोते हैं, उन का शरीर ही कुटुम्ब है, वस्त्र भी फटा है एवं सैंकड़ों थिगारियों से युक्त भी महामलिन ओढ़ने के लिये कथरी है। इस महाशोचनीय दशा के प्राप्त होने पर भी बड़े आश्चर्य तथा खेद का विषय है कि उन को तो भी विषयवासना नहीं छोड़ती ॥

अनेक मनुष्य विरक्त संन्यासी का वेष धारण कर सब कुछ त्याग देते हैं तो भी मन से विषयभोग की वासना नहीं छूटती इस लिये पूर्ण वैराग्य की योग्यता हुए विना किसी को विरक्त न होना चाहिये और वैराग्य होने पर भी नित्य २ विद्याभ्यास और अच्छे विद्वान् महात्माओं का सत्संग करके विरक्तदशा को पुष्ट करते रहना चाहिये ॥

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ,
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम् ।
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्द्धिजघनं,
महो निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरुकृतम् ॥ २० ॥

स्त्रियों के स्तन मांस के लोंदे हैं उन्हें सुवर्णकलश की उपमा देते हैं, मुख थूकखकार का घर है उसे चन्द्रमा के समान बतलाते हैं और टपकते हुए मूत्र से भीगी हुई जांघों को श्रेष्ठ हाथी की सूंड़ के समान कहते हैं। शोक है कि स्त्रियों के अत्यन्त निन्दनीय रूप को कवियों ने कैसा बढ़ाया है ॥

तत्वज्ञान के अवसर में प्रत्येक वस्तु का अवयवज्ञान अर्थात् उस के विशेष मर्मों तक बुद्धि पहुंचनी चाहिये। समुदायमात्र के जानने से जिस पदार्थ

राग होता उसी के अवयवविभागरूप विशेष ज्ञान से ग्लानि होती है। वास्तव में रस रुधिर मांस मेदा हड्डी मज्जा और शुक्र तथा मल मूत्र और वात पित्त कफ ये ही सब शरीर में भरे हुए हैं। परमार्थ की ओर झुकने वाले विरक्त पुरुष को स्त्री-सम्बन्धी कामसुखभोग की वासना को तोड़ने के लिये ऐसा ही शोचना आवश्यक है। यदि स्त्री को वैराग्य हो और वह परमार्थ की ओर चले तो वह भी पुरुष के शरीर को ऐसा ही निन्दनीय शोचा करे ॥

अजानन्माहात्म्यं पततु शलभो दीपदहने,
स मीनोऽप्यज्ञानाद्बडिशयुतमश्नातु पिशितम् ।
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान्,
न मुञ्चामः कामानहह ! गहनो मोहमहिमा ॥२१॥

पतङ्ग दीपक की अग्नि में गिर जावे तो कुछ खेद का विषय नहीं है क्योंकि वह अग्नि की भस्म करने की शक्ति को नहीं जानता एवं मछली भी विना जाने वंशी (कंटिया) के मांस को निगल जावे तो कुछ शोक नहीं परन्तु अत्यन्त खेद इस बात पर है कि हम जान बूझ के दुःखदायी विषयों की अभिलाषा नहीं छोड़ते इस से प्रतीत होता है कि मोह (अविद्या की) महिमा कठिन और बड़ी अपार है ॥

सब शास्त्रों का एक ही सिद्धान्त है कि मनुष्यादि प्राणियों को जो २ विपत्ति वा कष्ट भोगने पड़ते हैं उन सब अनर्थों का मूल अविद्या अज्ञानरूप मोह ही है "तेषां मोहः पापीयान्०" राग द्वेषादि सब दोषों में मोह ही मुख्य कर पाप का मूल है। जगत् में अच्छे २ विद्वान् विचारशील कहते मानते भी हैं कि कामना-तृष्णा, चाहना भोगोत्कण्ठा ही सब अनर्थों का मूल है तथापि उसी भोग तृष्णा की फांस में फसे रहते हैं इसलिये मोहान्धकार छोड़ने के लिये बड़ा प्रबल उपाय बुद्धों को करना चाहिये ॥

विसमलमशनाय स्वादु पानाय तोयं,
शयनमवनिपृष्ठे वल्कले वाससी च ।
नवधनमधुपानभ्रान्तसर्वेन्द्रियाणा,
मविनयमनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम् ॥२२॥

जब हम को कमलिनीकन्द आदि अनेक फल भोजन के लिये, मधुर जल पीने को, पृथ्वी सोने को और वृक्ष के के वकले पहिरने के निमित्त ईश्वरीय

रचना में स्वतः प्राप्त हैं, तो फिर थोड़े से नवीन धन रूपी मद्यपान से जिन की सब इन्द्रियां चञ्चल मत्त हैं ऐसे दुर्जनों का अनादर हम क्यों सहें॥

सब से अधिक खाने पीने पहिरने ओढ़ने के लिये मनुष्य को बड़ी चिन्ता घेरे रहती है। भोजनादि के लिये ही अहङ्कारी धनियों की कुदृष्टि वा घमकी सहने पड़ती है इसलिये परमार्थ में चलने वाले पुरुष वैराग्यधारण कर जङ्गल के कन्द मूल फलादि को खा पी कर अपना निर्वाह करें इसी में सुख है॥

त्रिपुलहृदयैर्धन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा,
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजित्य तृणं यथा।
इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुर्दश भुञ्जते,
कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसां क एष मदज्वरः॥ २३॥

कोई धन्यवाद योग्य महाशय महात्मा ऐसे हुए हैं जिन्हों ने जगत् (प्राणियों) को उत्पन्न (वृद्धि उन्नति द्वारा प्रकट) किया, कोई ऐसे हुए कि जिन्हों ने इस जगत् का धारण (सब के सुख दुःख का भारधारण) किया, कोई ऐसे हुए कि जिन्हों ने इस जगत् (पृथिवी के राज्य) को जीत कर तृण समान दूसरों को दे दिया और कोई धीर ऐसे हैं जो चौदह भुवनों को भोगते हैं। अब इस जगत् में कोई ऐसे क्षुद्र हृदय पुरुष हैं कि जिन को थोड़े से गांवों की ठकुराई पाकर के अभिमान का ज्वर घेर आता है॥

मनुष्य को चाहिये कि इतिहासादि द्वारा महान् पुरुषों के महत्त्व के कामों को सदा शोचा करे और उस से अपने हृदय की तुच्छता को छोड़ने का सदा उपाय करता रहे तो बहुत काल में जाकर उस का अच्छा सुधार हो सकता है। संसार के थोड़े २ वा छोटे २ अधिकार पाकर गर्व न करे॥

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः,
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः।
इत्थं मानद ! नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं,
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निःस्पृहाः॥२४॥

तुम राजा हो तो हम भी गुरु की सेवा कर बुद्धि के अभिमान से उच्चपद को प्राप्त हुए हैं यदि तुम धनादि ऐश्वर्य्य से प्रसिद्ध हो तो कवि लोग हमारे भी

यश को दिशाओं में वर्णित करते हैं इस प्रकार हे मानद! (प्रतिष्ठा देने वाले राजन्!) तुम में और हम में कुछ विशेष अन्तर नहीं है यदि तुम हम से मुख फेरते हो तो हम भी तुम से कुछ आशा नहीं रखते॥

विद्या विज्ञान युक्त धार्मिक विद्वान् को उचित है कि वह धन को बड़ा मान कर उन धनियों का प्रशंसी (खुशामदी) न बने क्योंकि इस से विद्या और धर्म का गौरव हृदय में स्थान नहीं पाता केवल धनादि ऐश्वर्य का गौरव रहजाता है इस लिये विद्या और धर्म से अपना गौरव माने राजादि धनिकों की अपेक्षा अपने को तुच्छ न समझे तभी विद्या और धर्म की वृद्धि कर सकता है। जो जिस को बड़ा मानता है वही उस की उन्नति करना चाहता है॥

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतै,
र्भुवस्तस्या लाभे कइव बहुमानः क्षितिभुजाम्।
तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो,
विषादे कर्त्तव्ये विदधति जडाः प्रत्युत मुदम्॥ २५॥

सैकड़ों राजा इस सप्तद्वीपा पूर्ण पृथिवी रूप स्त्री को अपनी २ मान और भोग कर छोड़ गये फिर इस पृथिवीभोग के लाभ से राजाओं को क्या अभिमान करना चाहिये। अब तो उस के टुकड़े का टुकड़ा फिर उस का भी टुकड़ा उस से भी न्यून अंश (थोड़ी जमीन्दारी) पाके अपने को भूपति (राजा) मानते हैं आश्चर्य यह है कि यह स्थान शोक करने का है परन्तु मूर्ख लोग इस में उलटा ही हर्ष मानते हैं॥

जिस स्त्री के बहुत पति हो २ कर मर चुके हों ऐसी स्त्री मिले तो दुःख मानना तथा डरना भी चाहिये क्योंकि अन्यों के भोगे का भोग हमें मिला तो क्या मिला? और जैसे अन्य अपने पतियों को इस ने खा लिया वैसे थोड़े दिन में हम को भी खा जायगी। अर्थात् जिन ऐश्वर्यादि भोगों को अनादि काल से वार २ लोग भोग रहे हैं अब उन भोगे हुए भोग्यों के मिलने पर अभिमान करना व्यर्थ है॥

मृत्पिण्डो जलरेखया वलयितः सर्वोऽप्ययं ह्यण्वणु,
रङ्गीकृत्य सएव संयुगशतैराज्ञां गणैर्भुज्यते।
तद्दद्युर्ददतेऽथवा न किमपि क्षुद्रा दरिद्रा भृशं,
धिग्धिक् तान् पुरुषाधमान् धनकणं वाञ्छन्ति तेभ्योऽपि ये॥२६॥

जो यह भूमि एक मिट्टी का ढेला समुद्ररूप पानी की रेखा से बीच २ लपेटा हुआ है प्रथम तो यह आप ही सम्पूर्ण छोटासा है फिर अनेक राजा लोग सैकड़ों लड़ाइयां लड़ २ कर अपना २ भाग बांट के इसे किसी प्रकार से भोगते हैं। वे छोटे ग्रास को बांटने के लिये लड़ने वाले क्षुद्र दरिद्र राजा न कुछ दे सके और न देते हैं अथवा "ये राजा लोग कुछ देते हैं वा नहीं देते" इस प्रकार कह के जो पुरुष उन से धनकण की वाञ्छा करते हैं उन नीच पुरुषों को बार २ धिक्कार है ॥

विद्या और धर्म का प्रचार न रहने से धर्म का गौरव उठ गया इस से छोटे २ देश के मूर्ख राजा विद्वान् धर्मात्माओं की सेवा नहीं करते तो धर्मज्ञ विद्वानों को भी उचित है कि वे उन दरिद्र राजाओं से कुछ सहायता न मांगें ऐसा करने से विद्वान् भी नीच अधम पुरुष हो जाते हैं ॥

न नटा न विटा न गायना, न परद्रोहनिबद्धबुद्धयः ।
नृपसद्मनि नाम के वयं, कुचभारानमिता न योषितः ॥ २७ ॥

न तो हम नट हैं, न परस्त्रियों में लम्पट हैं, न गवैये हैं, न दूसरों के निन्दक चुगल हैं और न बड़े स्तनों के भार से नवीहुई स्त्री हैं फिर राजाओं के घर हम को कौन पूंछता है ॥

राजादि श्रीमानों में जब विद्या धर्मादि का गौरव नहीं रहता तब वे नट भांड़ वेश्यादि से ही प्रसन्न रहते हैं अच्छे ज्ञानी धर्मात्माओं का आदर सत्कार नहीं करते इस से विद्वान् धर्मज्ञ लोग भी उन से सत्कार पाने की इच्छा न किया करें ॥

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये,
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्ध्यै विषयिणाम् ।
इदानीं तु प्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रविमुखा,
नहो कष्टं सापि प्रतिदिनमधोऽधः प्रविशति ॥२८॥

पहिले जो विद्वत्ता शान्ति युक्त विचार शील पण्डितों के क्लेश को दूर करने के निमित्त थी फिर कुछ दिन पश्चात् वही विद्वत्ता विषयी मनुष्यों के विषय-सम्बन्धी सुख की सिद्धि के हेतु हुई । इस समय राजाओं को शास्त्र पढ़ने वा सुनने से विमुख देखकर अत्यन्त कष्ट होता है और विद्या भी प्रतिदिन अधोगति (अप्रचार) को प्राप्त होती जाती है ॥

वास्तव में शास्त्र पढ़ने का मुख्य उद्देश यही था जो अन्य किसी प्रका[र] दूर नहीं हो सकते ऐसे महान् कष्ट शास्त्राध्ययन द्वारा हटाये जावें और इ[स] मार्ग से मुक्ति तक प्राप्त होती थी। पीछे विषयासक्ति बढ़ाने वाले नये का[व्य] व्यादि ग्रन्थ बनगये तब से संस्कृत पढ़ना विषयसुखभोग के लिये हुआ पर अ[ब] संस्कृत पढ़ने की परिपाटी ही धीरे २ छूटती जाती है। विचारशीलों को चा[-] हिये कि बड़ी आपत्तियों से बचने और मुक्ति सुखानुभव के लिये वेद को [प-] पढ़ें और जानें ॥

स जातः कोप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं,
कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमलङ्कारविषये ।
नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुना,
नमद्भिः कः पुंसामयमतुलदर्पज्वरभरः ॥२९॥

पहिले कोई पुरुष ऐसे हुए हैं कि जिन के कपालों (खोपड़ियों) की माल[ा] बना कर भूषण बुद्धि से मदनरिपु शिवजीने अपने मस्तक पर वा गले में धारि[त] की थी। अब देखना चाहिये कि किन्हीं प्राण पोषण की ओर झुकी बुद्धि वा[ले] पुरुषों से प्रतिष्ठा पाकर मनुष्य अतुल अभिमान के ज्वर से कैसे भारी हो रहे हैं

विद्या धर्म की जब वृद्धि होती है तब विद्वान् मनुष्य बड़ी ऊंची प्रतिष्ठ[ा] पाकर भी अभिमानी नहीं होते। और जब धनैश्वर्यादि का लालच बढ़ता है तब कोई छोटा अधिकारी भी जिस से सीधे बोल दे तो वह अपनी पर[म] प्रतिष्ठा मानता है और अभिमान से फूला नहीं समाता। यदि कल्याण चाहते हो तो तुम को वेदोक्त विद्या तथा धर्म का शरण लेना चाहिये ॥

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि गिरामीश्महे यावदित्थं,
शूरस्त्वं वादिदर्पज्वरशमनविधावक्षयं पाटवं नः ।
सेवन्ते त्वां धनान्धा मतिमलहतये मामपि श्रोतुकामा,
मय्यप्यास्था न चेत्ते त्वयि मम सुतरामेष राजन्गतोऽस्मि ॥३०॥

तुम धन कोशके ईश्वर हो तो हम भी विद्या कोश के स्वामी हैं, तुम युद्ध[-] करने में शूर वीर हो तो हम भी शास्त्रार्थ करने वाले वादियों के अभिमान-[ज्व-] ज्वर को तोड़ने में अच्छे कुशल हैं, तुम्हें धनान्ध धन चाहने वाले धनाशाग्रहके

ग्रस्त सेवते हैं तो हमें भी अपनी बुद्धि का मल दूर करनें की इच्छा वाले शास्त्र-श्रोता सेवते हैं। इसलिये हे राजन् ! यदि हम में तुम श्रद्धा नहीं रखते तो देखो हम ये जाते हैं और तुम्हारी कुछ आकाङ्क्षा (परवाह) नहीं रखते ॥

विद्वान् पण्डित ब्राह्मणों को चाहिये कि विद्या और धर्म से अपना गौरव रक्खें और राजादि श्रीमानों की प्रतिष्ठा से अपनी प्रतिष्ठा को अधिक मानकर विद्या धर्म द्वारा रक्षा तथा वृद्धि करें ॥

अतिक्रान्तः कालो लटभललनाभोगसुभगो,
भ्रमन्तः श्रान्ताः स्मः सुचिरमिह संसारसरणौ ।
इदानीं स्वःसिन्धोस्तटभुवि समाक्रन्दनगिरः,
सुतारैः फूत्कारैः शिवशिवशिवेति प्रतनुमः ॥३१॥

इस संसार में युवति भाव को प्राप्त स्त्रियों के भोग सुख में फिरते २ बहुत काल बीत गया और हम भी अत्यन्त थक गये हैं इस लिये गङ्गा के तट कछार भूमि पर बैठ कर एकतार फूत्कारों से वाणी को गुञ्जार निकालते हुए शिव का जप वा शिव शिव शिव इस नाम का विस्तार करेंगे ॥

मनुष्य को चाहिये कि यौवनावस्था में धनार्जन कर गृहाश्रम का सुख भोग और पुत्रों को उत्पन्न कर शिक्षित कर दे पीछे वृद्धावस्था में घर से निकल एकान्त जङ्गल में कुटी बना कर रहे और केवल ईश्वर का आराधन ही अपना कर्त्तव्य समझे ॥

माने म्लायिनि खण्डिते च वसुनि व्यर्थे प्रयातेऽर्थिनि,
क्षीणे बन्धुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने ।
युक्तं केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्नुकन्यापयः,
पूतग्रावगिरीन्द्रकन्दरदरीकुञ्जे निवासः क्वचित् ॥३२॥

मान प्रतिष्ठा सब (घटगयी) द्रव्य नष्ट हो गया, याचक (मंगता) लोग आशा कर विमुख फिर जाने लगे, भ्राता, स्त्री, पुत्र और सम्बन्धी आदि यात्रा करगये धीरे २ युवावस्था नष्ट हो गयी, ऐसे समय में बुद्धिमान् पुरुषों को केवल यही चाहिये कि जिस पर्वत के पाषाण (पत्थर) गङ्गाजल से पवित्र हैं उस पर्वत के विवर की गुफा के निकुञ्ज में कहीं निवास करे ॥

अन्त्यावस्था में प्रायः संसार के बन्धन मनुष्य से स्वयमेव छूट जाते हैं इस लिये शास्त्रकारों ने चौथा संन्यास आश्रम चौथी अवस्था में करना लिखा है। मनुष्यों को चाहिये कि चौथी अवस्था आने से पहिले ही विरक्त होने के लिये बहुप्रयत्न कर रहे और समय आते ही विरक्त हो कर केवल ईश्वर की आराधना करे।

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहु हा,
प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदय ! क्लेशकलितम् ।
प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणिगुणे,
विमुक्तः संकल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते ॥३३॥

हे हृदय ! (मनः !) तू प्रतिदिन दूसरों के चित्तों का आराधन कर प्रसन्न करना चाहता है, शोक है कि तू व्यर्थ ही क्लेश उठाता है क्योंकि यदि तू भीतर स्वयं चिन्तामणि के गुणग्रहण करे अर्थात् शान्ति सन्तोषादि गुणधारण करे तो तेरे सब संकल्प छूट जावेंगे और तू अति प्रसन्न होगा। क्या तेरी अभिलाषायें उस समय पूर्ण न होंगी किन्तु सब पूर्ण हो जावेंगी ॥

जो पुरुष अपने भीतरी विचार में स्मरण करता हुआ संतुष्ट होने लगता है तब उस को दूसरों की प्रसन्नता से सम्बन्ध रखने वाले विषयों के सुखानुभव की उत्कण्ठा धीरे २ शिथिल होती और तुच्छ प्रतीत होने लगती है और प्रज्ञाप्रसाद का सुख सर्वोपरि प्रतीत होने लगता है इस लिये अपने भीतरी ही प्राप्त होने वाले अगाध निर्बाध सुख को छोड़ इधर उधर भागना व्यर्थ है ॥

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं,
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ।
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं,
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥३४॥

भोग में रोग का भय, कुल में संकर (दोगला) उत्पन्न होने आदि दाग लगने का भय, धन बढ़ने में राजा का भय, चुप रहने से दीनता का भय, बल में शत्रु का भय, रूप में बुढ़ापे का भय, शास्त्र में शास्त्रार्थ का भय, गुण में खलप्रयुक्त दोष का भय और शरीर के अधिक सुधाने में मृत्यु का भय है। इस से निश्चय हुआ कि पृथिवी पर सब वस्तु भययुक्त ही हैं केवल मनुष्यों के लिये एक वैराग्य ही निर्भय स्थान है ॥

जब मनुष्य संसार के सब पदार्थों को छोड़ता है तब सब प्रकार के झगड़े झंझटे उन्हीं पदार्थों के साथ छूट जाते हैं। किसी प्रकार की आपत्ति उस पर आना सम्भव नहीं रहती इस लिये प्रथम से ही वैराग्य की ओर झुकावट रखता हुआ अवसर पाकर पूर्ण वैराग्य धारण करे। यदि वास्तव में चित्त से पक्का वैराग्य हो जावे तो विरक्ताश्रम के समान संसार में कहीं सुख मिलना कभी किसी को सम्भव नहीं है जिस को सर्वोत्तम सुख देखना हो वह वैराग्य का आश्रय लेवे ॥

अमीषां प्राणानां तुलितबिसिनीपत्रपयसां,
कृतं किन्नास्माभिर्विगलितविवेकैर्व्यवसितम् ।
यदाढ्यानामग्रे द्रविणमदनिःशङ्कमनसां,
कृतं वीतव्रीडैर्निजगुणकथापातकमपि ॥ ३५ ॥

कमल के पत्र पर चञ्चल बूंद के समान इन प्राणों के हेतु हमने विवेक त्याग कर क्या न किया! किन्तु सब कुछ कर्त्तव्याकर्त्तव्य किया। और धन के मद मदान्ध धनाढ्यों के आगे हमने लज्जा को छोड़ कर अपने गुणों का कहना-रूप पाप भी किया ॥

मनुष्य का जीवन स्थिर नहीं कभी मनुष्य जिस उपाय से जीवन की रक्षा का ठीक समझता है उसी से मरण हो जाता है। और कभी जिस से प्राणों का भय शोचता है उसी से रक्षा होती है।। इस लिये सर्वथा उचित यही है धर्म और ईश्वर का शरण लेकर संसार के पदार्थों से वैराग्य रखता हुआ वरे तो जन्मान्तर में भी इस का कल्याण हो सकता है किन्तु प्राणरक्षा के लिये किसी श्रीमान् राजादि की प्रशंसा (खुशामद) न करे ॥

भ्रातः! कष्टमहो महान्स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत्,
पार्श्वे तस्य च सापि राजपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः ।
उद्रिक्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ताः कथाः,
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपदं कालाय तस्मै नमः ॥ ३६ ॥

हे भाई! आश्चर्य और कष्ट का विषय है कि देखो वह कैसा श्रेष्ठ मालिक राजा था, उस की राजसभा कैसी प्रशंसनीय थी, उस की स्त्रियां रानी चन्द्रमुखी थीं, उस के पुत्रों का समुदाय कैसा बलिष्ठ था, उस के वन्दिगण

कैसे अच्छे थे और उस के सम्मुख कैसी २ उत्तम कथायें हुआ करती थीं वे सब जिस काल के वश होकर स्मरणमात्र रह गये हैं उस काल को नमस्कार है ॥

तुम अभी अपने जिस धन ऐश्वर्य स्त्री पुत्र यौवन आदि से अपना महत्व समझ कर फूल रहे हो उसी मद में डूबे हुए सब भावी कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विवेक को भुलाये बैठे हो वह सब थोड़े दिन में लौटपौट हो जायगा । जैसे पहिले बड़े २ लोगों का सब विभव चला गया वैसे तुम्हारा भी न रहेगा । इस लिये भावी कर्त्तव्य का ध्यान रक्खो भूल में मत पड़े रहो सुख के हेतु सब लौकिक पदार्थों को अनित्य मानते हुए धीरे २ नित्य धर्म का भी कुछ संचय करते चलो ॥

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता एव खलु ते ।
समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः,
इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतनाद्,
गता तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः ॥ ३७ ॥

जिन से हम उत्पन्न हुए थे उन को मर गये बहुत दिन हुए फिर जिन के साथ खेलते खाते बढ़े थे उन का भी स्मरण मात्र रह गया । अब हमारी यह दशा है कि प्रतिदिन मृत्यु के निकट आजाने से अधिक बालु वाली नदी के किनारे के वृक्षों के समान अवस्था को प्राप्त हो रहे हैं ॥

उत्पन्न हुए शरीरादि संसारस्थ पदार्थों को जो निरन्तर स्थिर बुद्धि से नाशवान् अनित्य देखता विचारता है वही पुरुष भावी कल्याण के लिये कुछ उपाय कर सकता है । और उस की रीति यही है कि अपने पिता माता भाई बन्धु, इष्ट मित्रादि सम्बन्धी वा प्रेमी इस अनित्य जगत् को छोड़ २ जैसे चले गये वैसे वृद्ध हुआ मैं भी शीघ्र इस सब को छोड़ कर अवश्य चला जाऊंगा इस लिये इसी कीचड़ में न फसा रहूं किन्तु आगे के लिये ज्ञान वैराग्य और ईश्वर की भक्ति का संचय करूं ॥

यत्रानेकः क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको,
यत्राप्येकस्तदनुबहवस्तत्र चान्ते न चैकः ।
इत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन्द्वाविवाक्षौ,
कालः काल्या सह बहुकलः क्रीडति प्राणसारैः ॥ ३८ ॥

जिस किसी घर में अनेक प्राणी थे वहां अब एक प्राणी दृष्टिगत होता है और जहां एक था वहां अनेक दीख पड़ते हैं तथा जहां बहुत थे वहां एक भी नहीं है । इस प्रकार बहुत कलावाला काल अपनी जमा खर्चरूप न्यूनाधिक करने की शक्ति से इन रात्रि दिन रूपी दो पाशों को फेंकता हुआ प्राणों की गोटी बना कर खेल रहा है ॥

परमार्थ की ओर झुकने वाले को काल की महिमा पर ध्यान देना भी परमावश्यक है । ३० । ४० । ५० वर्ष के भीतर ही ध्यान देकर देखें तो जगत् में बहुत कुछ लौट पौट हो जाता है । कहीं बहुतों में एक ही रह जाता और कहीं एक से अनेक मनुष्यादि बढ़ जाते हैं अधिक ध्यान देने से एक प्रकार का खेलसा प्रतीत होता है । तब उचित है कि हम इस खेल में भूले न रहें अपने कल्याण का उपाय भी शोचें ॥

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं,
गुणोदर्कान्दारानुत परिचरामः सविनयम् ।
पिबामः शास्त्रौघानुतविविधकाव्यामृतरसान्,
न विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने ॥ ३९ ॥

इस लोक में क्या हम तपस्या करते हुए गङ्गा के किनारे पर वसें ? वा उत्तम गुणवती स्त्रियों की विनय पूर्वक सेवा शुश्रूषा करें ? अथवा वेदान्तादि शास्त्रामृत तथा काव्यामृतरस को पीवें ? इन में से किस को करें ? यह हम इस लिये नहीं जानते कि आयु थोड़े निमेष (पलक मारना) मात्र ही है ॥

थोड़े से जीवन भर में जब हम तप आदि किसी एक काम को भी पूर्ण सिद्ध नहीं कर सकते तो कई का पूर्ण होना कैसे सम्भव है । ? इस लिये मनुष्य को यदि बोध (होश) हो जाय तो संसार परमार्थ दोनों के हितकारी किसी तप आदि उत्तम काम को करे । यदि लोक यात्रा अर्थात् शास्त्रोक्त ऋषि ऋणादि का चुकाना आवश्यक समझा जावे तो थोड़ा २ समय सब कामों के लिये बांटले सब को करे परन्तु गृहाश्रम के समय काम भोगादि में सुधबुध छोड़ कर (बेहोशी से) लिप्त न होजावे ॥

गङ्गातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य,
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य ।

किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः,
सम्प्राप्स्यन्ते जरठहरिणाः शृङ्गकण्डूविनोदम् ॥ ४० ॥

गङ्गा किनारे हिमालय की शिला पर पद्मासन बांधे हुए तथा ब्रह्म ध्यान के अभ्यास से योग की विलक्षण निद्रा को प्राप्त हुए मेरे क्या ऐसे भी अच्छे दिन आवेंगे कि जिन दिनों में बूढ़े मृग भयरहित हो कर मेरे शरीर में सींगों के घिसने की लीला को प्राप्त होंगे अर्थात् मेरे शरीर से अपने सींगों की खुजलाहट मिटावेंगे ॥

मनुष्य जगत् में जो २ जैसा २ काम करता है वह पहिले मन में उस का शोच विचार करता तदनन्तर वाणी से कहता है और तीसरी कक्षा में शरीर से कर सकता है । जब साधारण काम भी प्रथम मन वाणी में आये विना शरीर से नहीं होता तो बड़े २ इष्टसाधक काम शरीर से कैसे हो सकते हैं । इस लिये अपने भावी कल्याणार्थ जो कुछ कर्त्तव्य योगाभ्यासादि हम सुने जानें उस का प्रथम मन में शोचविचार द्वारा दृढ़ संकल्प करें और तदनन्तर वाणी से कहते रहें तो फिर अवसर पाकर शरीर से उस काम का कर सकना भी अवश्य अधिक सुगम हो जायगा ॥

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने,
सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः ।
भवाभोगोद्विग्नाः शिवशिवशिवेत्यार्त्तवचसा,
कदा स्यामानन्दोद्गतबहुलबाष्पप्लुतदृशा ॥ ४१ ॥

सुन्दर उज्ज्वल चांदनी से श्वेत कहीं गङ्गा के तट पर संसार सम्बन्धी आभोगों से भयभीत हुए इस सब कोलाहल के मिट जाने पर रात्रियों में सुख पूर्वक बैठ कर शिव शिव शिव इस गद्गद वचन के कहने पर आनन्दाश्रुओं से भीगे नेत्र वाले न जाने कब होंगे ? ॥

गृहाश्रम में शास्त्रसम्बन्धी शुद्ध विचारों तथा धर्मनिष्ठ आप्त विद्वानों के सत्सङ्गादि द्वारा भविष्यत् के कर्त्तव्यों का सदा ही अनुसन्धान करता रहे और ऐसा दृढ़ संकल्प मन में अवश्य करता रहे कि ऐसा समय आवे कि जब हम संसारी कामभोग की वासनाओं को समाप्त कर कहीं एकान्त निर्विघ्न शुद्ध स्थान वा देश में बैठ कर अपने कल्याणार्थ केवल परमेश्वर का आराधन करें ॥

महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुरसरिद्,
गुहाएवागारं वसनमपि ताएव हरितः ।
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रतमिदं,
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता ॥ ४२ ॥

महादेव ही जिस के देव हैं गङ्गा नदी ही जिस को अधिक इष्ट है गुहा (गुफा) ही जिस का घर है तथा दिशायें ही जिस के वस्त्र हैं मित्र जिस का काल है और कितना कहें वट वृक्ष ही जिस की प्रिया भार्य्या है वह अदैन्य व्रत का धारण करने वाला पुरुष सर्वोत्तम है ॥

वैराग्यकाल में परमेश्वर को भी विरक्त मान कर उपासना करे और गुफा-आदि को अपना रहने का स्थानादि माने अर्थात् जिन निवास स्थानादि के विना शरीर की यात्रा सिद्ध नहीं होती उन की कल्पना एकान्त जङ्गल में ही कर लेवे जिस से उन के विना होने वाला दुःख व्याप्त न हो चित्त में सन्तोष और वैराग्य दृढ़ होता जावे ॥

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरङ्गाकुला,
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्य्यद्रुमध्वंसिनी ।
मोहावर्त्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी,
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः ॥४३॥

आशा (अभिलाषा) एक नदी है मनोरथ रूप उस में जल भरा है तृष्णा रूपी तरङ्गों से वह आशा नदी व्याकुल है राग ही उस में ग्राह (पकड़ने वाला जल जन्तु) है तर्क ही उस में पक्षी हैं उस नदी का वेग धैर्य्यरूप वृक्ष को ढाने वाला है मोह रूप उस में भंवर पड़ते हैं इस से उस का तरना दुस्तर और बड़ा कठिन है बड़ी २ चिन्तायें उस के तट हैं। इस आशा नामवाली नदी के पार पहुंचे हुए बड़े शुद्ध मननशील योगी ही आनन्द पाते हैं ॥

संसारी सुख भोगों की वासनाओं से उत्पन्न हुई अभिलाषा ही मनुष्य के लिये संसार में बड़ी भारी रुकावट वा बन्धन हैं। इन रुकावट वा बन्धनों को छुड़ा कर संसार के महान् भयङ्कर दुःखों से बच जाने के लिये योगाभ्यास ही एक प्रधान साधन है। जो कोई संसारसागर में गोता खाने से बचने की इच्छा रखता हो उस को अति उचित है कि योगाभ्यास करने का दृढ़ संकल्प करे ॥

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात ! तादृङ्,
नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवर्त्मागतो वा ।
योऽयं धत्ते विषयकरिणीगाढरूढाभिमानः,
क्षीबस्यान्तःकरणकरिणः संयमालानलीनाम् ॥ ४४ ॥

हे भाई ! जब से सृष्टि रची गयी है तब से आज तक तीन लोकों में खोजते हुए हमारे सुनने वा देखने में ऐसा कोई पुरुष नहीं आया जो विषयरूप हथिनी से बचने के लिये अन्तःकरण रूप उन्मत्त हाथी को अभिमानपूर्वक संयम रूप बन्धन में बांध रक्खे ॥

जो मनुष्य अपनी विचारशक्ति से काम क्रोधों के प्रचण्ड वेगों को रोकने का जब तक अभ्यास नहीं करता तब तक वह योग का अधिकारी नहीं हो सकता । और काम क्रोध के वेग को रोक लेने की शक्ति वाले का योगाभ्यास में चल जाना बहुत ही सहज है । प्राप्त न होने की दशा में काम का रोकना रोकने में नहीं गिना जाता । ऐसे काम भोग के त्यागी तो जगत् में लाखों हैं । परन्तु निर्विघ्न निर्भयता से प्राप्त होने की दशा में कामवेग का विचार पूर्वक रोकने वाला कभी कोई विरला ही हो सकता है वही योगी और वही मुक्ति के अनुपम सुख का अधिकारी हो सकता है । इसी कारण अनेक वा अधिक मनुष्य योगी ज्ञानी तथा जीवन्मुक्त नहीं दीख पड़ते हैं ॥

ये वर्त्तन्ते धनपतिपुरः प्रार्थनादुःखभाजो,
ये चाल्पत्वं दधति विषयाक्षेपपर्य्यस्तबुद्धेः ।
तेषामन्तःस्फुरितहसितं वासराणां स्मरेयं,
ध्यानच्छेदे शिखरिकुहरग्रावशय्यानिषण्णः ॥ ४५ ॥

जो पुरुष धनवानों के आगे प्रार्थनारूप दुःख के पात्र बने हुए हैं और जो जन विषय सामग्री में विस्तृत बुद्धि वालों के आगे अपने को छोटा समझते हैं । ध्यान से विश्राम पाकर पर्वत की कन्दरा में पत्थर की चट्टान पर बैठे हुए हम उन के मन ही मन में पुलकित होने और हंसने सम्बन्धी दिनों का स्मरण करेंगे ॥

यह भी प्रथम से ही मन में दृढ़ संकल्प करलेवे कि जब हम विरक्त होंगे तब पर्वतादि की गुफा में कहीं एकान्त में ही रहेंगे । ग्रामादि के निकट रहने

से वैराग्य ठीक अच्छा नहीं रह सकता और एकान्त में भी जब संसारी मनुष्यों का स्मरण आवेगा तब धनादि की अधिक तृष्णा से होने वाली उन की दुर्दशा को शोचते हुए अपने कर्त्तव्य में और भी दृढ़ता करेंगे ॥

विद्यानाधिगता कलङ्करहिता वित्तं च नोपार्जितं,
शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न सम्पादिता ।
आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेऽपि नालिङ्गिताः,
कालोयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेरितः ॥ ४६ ॥

कलङ्क रहित विद्या नहीं पढ़ी, धनोपार्जन भी न किया, एकाग्र चित्त होकर माता पिता की सेवा भी न की तथा चञ्चल और दीर्घ नेत्र वाली प्राप्त यौवना स्त्रियों का स्वप्न में भी आलिङ्गन नहीं किया पराये ग्रास की वाञ्छा में लोलुप होकर कौवे की नाईं सब काल व्यर्थ ही बिता दिया ॥

मनुष्य को अपने व्यर्थ समय जाने का शोच वा पश्चात्ताप हुए विना भावी सुधार के लिये प्रवृत्ति नहीं होती जब वह बार २ शोचता है कि अब तक मुझ से अमुक २ भूल हुई अब ऐसा न करूं तभी अपना कुछ सुधार कर पाता और जो भूल वा प्रमाद रूप गूढ़ निद्रा में अधिक सोया हुआ है वह तो कुछ भी नहीं कर पाता इस लिये अपने पहिले से सुकृत न कर पाने पर अवश्य पश्चात्ताप करना चाहिये ॥

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः,
स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामावधिगतीः ।
वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणै,
स्त्रियामां नेष्यामो हरचरणचित्तैकशरणाः ॥ ४७ ॥

प्रबल दया से युक्त होकर सब धन का दान दे देने पर संसार में नाशशील कर्मों के फलों की अवधि तथा गति का स्मरण करते हुए हम महादेव के चरणों ही में चित्त लगा कर किसी पवित्र वन में शरद् ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा की किरणों के साथ तीन याम (पहर) वाली रात्रि को सुख पूर्वक व्यतीत करेंगे ॥

मनुष्य को चाहिये कि विरक्त होने का समय आवे तब सर्व वेदसयज्ञ कर के अपना सर्वस्व धनादि गुरु आचार्य ऋत्विज् स्त्री पुत्र भृत्यादि को यथा योग्य विभक्त कर देवे और पहिले से ऐसा करने के लिये मन में दृढ़ संकल्प कर लेवे

कि हम सर्वस्व दान कर के संसार की दशा को सोचते हुए कहीं शुद्ध एकान्त पवित्र वनादि स्थान में परमेश्वर के चरण कमलों का ध्यान करते हुए प्रसन्नता पूर्वक अकेले ही दिन रातों को बितावेंगे । सर्वस्व का त्याग कहने से मनु धर्म शास्त्र की आज्ञानुसार हम अपने प्रिय इष्ट मित्रों को अपने पुण्यों का फल संकल्पित कर देंगे कि हम ने आज तक जो कुछ पुण्य संचय किया है उस का फल हमारे इष्ट मित्रों प्रियों को मिले और हमारे निकृष्ट पाप कर्मों का फल हम से शत्रुता रखने वालों को मिले ऐसा विचार मन में दृढ़ करके पुण्य पापों का भी चित्त से विसर्जन त्याग करे तभी पूर्ण वैराग्य का सुख उस को मिल सकता है ॥

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या,
समइह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला,
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ॥ ४८ ॥

इस संसार में हम वल्कल (बकले) पहन कर सन्तुष्ट हैं और तुम अपने धन से सन्तुष्ट रहो हमारा और तुम्हारा संतोष सर्वथा समान है वह संसार में दरिद्र है जिस की तृष्णा बढ़ी हो (तुम्हे सन्तोष नहीं इस से तुम दरिद्र हो हमे सन्तोष हो गया इस से हमारी दरिद्रता दूर हो गयी यह ही हम में विशेषता है) मन के सन्तुष्ट होने पर कौन दरिद्र और कौन धनवान् है ? ॥

विरक्त पुरुष को चाहिये कि धनादि ऐश्वर्य के विना अपने को छोटा न माने और बड़े २ श्रीमानों को भी अपने से बड़ा न समझे किन्तु धनी को तृष्णा की अधिकता और अपने को सन्तोष का पात्र मान कर अपने को ही बड़ा समझे जो धनादि ऐश्वर्य के कारण लक्ष्मीवान् को बड़ा मानेगा तो अपने भीतर लघुता तुच्छता आवेगी इस से लोभ हो कर वैराग्य बिगड़ेगा । और सन्तोषादि के कारण अपने को धनी से बड़ा मानेगा तो प्रतिदिन विरक्त दशा पुष्ट होती जायगी और सन्तोष का फल पूरा सुख मिलेगा ॥

तदेतत्स्वाच्छन्द्यं विहरणमकार्पण्यमशनं,
सहायैः संवासो श्रुतमुपशमैकव्रतफलम् ।
मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि चिरस्यापि निमृशन्,
न जाने कस्यैषा परिणतिरुदारस्य तपसः ॥ ४९ ॥

स्वाधीन सर्वत्र विचरना, विना दीनता किये भोजन करना, सत्पुरुषों (महात्मा धर्मनिष्ठ विद्वानों) के साथ वासकरना, शान्तिरस से युक्त शास्त्रों को सुनना सुनाना रूप व्रत के फल को प्राप्त करना, एवं मन की बाहिरी विषयों में मन्द चेष्टा होना, तथा गुणवान् अगुणवान् कार्यों के तत्त्व का आलोचन करना ये सब बातें न जाने किस बड़े तप का फल हैं।

सर्वोपरि स्वतन्त्रतादि का होना ही वर्त्तमान देह में भी बड़े प्रधान सुख का मूल है सर्वोत्तम स्वतन्त्रतादि विरक्त दशा में ही प्राप्त हो सकते हैं जिन के कारण चक्रवर्ती राजा से भी अधिक पूर्णविरक्त पुरुष को वर्त्तमान में सुख मिलता है इसी कारण वह आगे मुक्ति का अधिकारी बनता है जो वर्त्तमान में दुःखी हो वह आगे भी मुक्त नहीं हो सकता। इस लिये जिस को अच्छा वैराग्य हो वह बड़ा ही भाग्यशाली पुण्यात्मा पुरुष है॥

पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं,
विस्तीर्णं वस्त्रमाशासुदशकममलं तल्पमस्वल्पमुर्वी।
येषां निःसङ्गताङ्गीकरणपरिणतिः स्वात्मसन्तोषिणस्ते,
धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्म निर्मूलयन्ति॥५०॥

हाथ ही जिन का पवित्र पात्र, फिरते घूमते जो कुछ मिलजावे वही जिन का भोज्य उत्तम अन्न, दशों दिशा ही जिन के विस्तीर्ण वस्त्र, तथा भूमि ही जिन की बड़ी शय्या एवं निःसङ्गता, का आश्रय लेना ही जिन का अभिप्रेत फल है ऐसे कर्मनिर्मूलक स्वात्मसन्तोषी ही पुरुष दीनता को छोड़ कर धन्यवाद तथा मोक्ष के अधिकारी होते हैं॥

यह सब विरक्त संन्यासियों का सामान है। हाथ में लेकर अन्न खावें पात्र कोई न रक्खें। कहीं अच्छा उत्तम भोजन मिलने के उद्योग की चिन्ता में न रहें अनायास मिले उसी से सन्तुष्ट रहें। वस्त्र धारण न करें शीतोष्ण सहने का अभ्यास करलें। पृथिवी पर सोवें खट्वादि की इच्छा न रक्खें, अपने भीतरी विचारों में ही सन्तुष्ट आनन्दित रहें और किसी का सहारा न लेकर केवल अकेले विचरें। ऐसा करने से आत्मा में बड़ा सुख मिलता और मुक्ति को प्राप्त होने योग्य हो जाते है।

दुराराध्यः स्वामी तुरगचलचित्ताः क्षितिभुजो,
वयं तु स्थूलेच्छा महति च पदे बद्धमनसः।

जरा देहं मृत्युर्हरति सकलं जीवितमिदं,
सखे ! नान्यच्छ्रेयो जगति विदुषोऽन्यत्र तपसः ॥५१॥

स्वामी कठिनता से, आराधनीय है तथा राजा लोग भी इस लिये सेवनीय नहीं कि वे तेज चलने वाले घोड़े के समान चञ्चल चित्त वाले हैं। और बड़ी सुखेच्छा वाले हमने मुक्ति रूप बड़े अधिकार की प्राप्ति के उपाय में मन को लगा रक्खा है। वृद्ध अवस्था देह की सुन्दरतादि को बिगाड़ती तथा मौत सम्पूर्ण जीवन को हरलेती है इस लिये हे मित्र ! इस जगत् में विद्वान् के लिये तप से भिन्न दूसरा कोई कल्याण का द्वार नहीं है ॥

संसार में जिस अपार दुःख से बचने का कोई उपाय नहीं तथा जिस दुर्लभ अधिकार वा सुख की प्राप्ति का कोई साधन नहीं, जहां कोई पुरुष चक्रवर्ती राज्य पाकर भी किसी उपाय से नहीं पहुंच सकता और जिन दुर्लभ कामों को कोई सब से बड़ा समर्थ पुरुष भी नहीं कर सकता वे सब अनन्यसाध्य काम तप से हो सकते हैं। इस लिये जो अपने को बहुत बड़ा बनाना चाहता है तो तप करे क्योंकि तप से भिन्न अन्य कोई बड़ा कल्याण का मार्ग नहीं है ॥

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचञ्चला,
आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीलीनाम्बुवद्भङ्गुरम्।
लोला यौवनलालना तनुभृतामित्याकलय्य द्रुतं,
योगे धैर्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विधध्वं बुधाः ॥५२॥

शरीर धारियों के भोग बादलों के समुदाय में चमकती हुई चञ्चल बिजुली के समान हैं आयु भी वायु से छिन्न भिन्न हो नष्ट हुए बादल के तुल्य क्षणभङ्गुर है ऐसे ही यौवन (ज्वानी) की उमंग भी अति चञ्चल (शीघ्र नष्ट होने वाली) है इन सब बातों को शीघ्र विचार कर हे बुद्धिमानो ! धैर्य्यसमाधि की सिद्धि से सुख पूर्वक प्राप्त होने योग्य योगाभ्यास में अतिशीघ्र बुद्धि को लगाओ ॥

धन कामादि भोगों, शरीर को सुधार अच्छा बनाकर रखने और अपने शरीर को अच्छा बना ठना देख संतुष्ट प्रसन्न होने तथा चढ़ती हुई यौवनावस्था की तरङ्गों में प्रायः अच्छे २ पढ़े लिखे विद्वान् लोग भी ऐसे लीन वा उन्मत्त हो कर समय काटने लगते हैं कि जानो हमे और कुछ भी भविष्यत् के लिये कर्त्तव्य नहीं

हे मन को यहां चिताया गया है कि तुम भूल में मत पड़े रहो, ये काम भोगादि सब अनित्य हैं तुम्हारा इन से कल्याण न होगा तुम पीछे शोचोगे तो पछताओगे अगाध दुःखसागर से पार होने के लिये यौवनावस्था में ही कुछ २ तयारी करते चलो ॥

पुण्ये ग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्नपालीं कपालीं,
मादाय न्यायगर्भद्विजसुखहुतभुग्धूमधूम्रोपकण्ठम् ।
द्वारं द्वारं प्रवृत्तो वरमुदरदरीपूरणाय क्षुधार्त्तो,
मानी प्राणी स धन्यो न पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषु दीनः ॥५३॥

बड़े पवित्र ग्राम अथवा वन में श्वेत उज्ज्वल वस्त्र से ढके हुए ठीकरे (मिट्टी के पात्र वा खप्पर) को लेकर अपनी पेटरूपी कन्दरा के भरने के लिये भूखा पुरुष न्यायवान् (धर्मनिष्ठ) ब्राह्मणों के सुख से होमे अग्नि के धूम से मलिन हुए घरों के प्रत्येक द्वार पर फिरता हुआ मानी पुरुष धन्य है परन्तु सर्वदा समान कुल वालों में दीन होकर रहना कदापि अच्छा नहीं ॥

यद्यपि भोजन वस्त्रादि से अच्छी दशा में रहते हुए गृहस्थ पुरुष की अपेक्षा फटे पुराने वस्त्र धारण कर मट्टी के खप्पर में घर २ से भोजन मांग २ खाने तथा एकान्त में असहाय रहने वाला भिक्षुक निकृष्ट दशा में प्रतीत होता है तथापि यदि उस को वास्तव में वैराग्य और ज्ञान के आनन्द का स्वाद मिल गया हो उस के चित्त में सन्तोष आगया हो संकल्प विकल्प चित्त से मिट गये हों अपने कर्त्तव्य और विचारों में दृढ़ होगया हो तो उस गृहस्थ की अपेक्षा वह विरक्त पुरुष अवश्य अधिक सुखी और अच्छा है ॥

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः,
किं वा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम् ।
इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणा जनै,
र्न क्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥५४॥

क्या यह चाण्डाल है ? वा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में से कोई है ? अथवा शूद्र है ? वा कोई तपस्वी है ? अथवा तत्त्वालोचन करने में जिस की अच्छी

बुद्धि है ऐसा कोई योगिराज है ? । इस प्रकार अनेक विकल्प वाले पुरुषों से कहे जाते हुए योगी जन रागद्वेष को छोड़ कर स्वच्छन्द मार्ग में चले जाते हैं ॥

परमार्थ साधनों में चलने वाले योगी पुरुषों को सब कोई नहीं जान सकता कि यह कैसा वा कौन है । उन का स्वरूप भी इस प्रकार का दर्शनीय नहीं रहता जिस को देख कर लौकिक बुद्धि वाला कोई अच्छा कहे और माने तथा योगाभ्यास की ओर चले हुए पुरुष का परम कर्त्तव्य यह है कि वह शास्त्रीय सिद्धान्तों द्वारा परमेश्वर की भक्ति और एकान्त में सोच २ अपने मार्ग का दृढ़ निश्चय करले कि यही ठीक कल्याण का मार्ग है इसी में चलते २ मेरा कल्याण हो जायगा तो वैसा करते वा चलते हुए को जो कोई कुछ अच्छा वा बुरा कहे उस पर ध्यान न देकर अपना काम करता चले निन्दा प्रशंसा सुन कर समदृष्टि रहना द्वन्द्व-सहन रूप तप भी योग का एक साधन है यदि प्रशंसा सुन कर आनन्द मानेगा तो निन्दा सुन कर भी दुःख अवश्य होगा ऐसा पुरुष योगी नहीं हो सकता ॥

सखे ! धन्याः केचित्त्रुटितभवबन्धव्यतिकरा,
वनान्ते चित्तान्तर्विषमविषयाशीविषगताः ।
शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवलगगनाभोगसुभगां,
नयन्ते ये रात्रिं सुकृतचयचित्तैकशरणाः ॥ ५५ ॥

जिन के संसार सम्बन्धी बन्धन कट गये हैं तथा जो वन में रह कर निरतिशय अभ्यास से चित्त के भीतर विषम विषयरूपी सर्प भय से दूर हुए हैं एवं पुण्य संचय में ही चित्त को लगाते हुए शरद् ऋतु की चांदनी से श्वेत प्रकाशित हुए आकाश के विस्तार से शोभायमान रात्रि को जो व्यतीत करते हैं हे मित्र ! वे पुरुष अत्यन्त धन्य हैं ॥

संसारी विषयसुख भोग की वासनाओं का चित्त से शिथिल होना बड़ा कठिन काम है । इसी से संसार के सुख को छोड़ कर संस्कारी ईश्वर का निरन्तर उपासक कोई २ पुरुष कभी२ छुरे की धार पर चलने के समान उस महाकठिन परमार्थ मार्ग में चल सकता है । ऐसे दुस्तर भयङ्कर मार्ग में चलना भीरु विषयलम्पटों वा लोभियों का काम नहीं है । किन्तु इस मार्ग में चलने को जो कटिबद्ध हो के पूरा साहस धारण कर लेते हैं वे सर्वोपरि शूर वीर समझने चाहिये ॥

एतस्माद्विरमेन्द्रियार्थगहनादायासकादाश्रमा-
च्छ्रेयोमार्गमशेषदुःखशमनव्यापारदक्षं क्षणात् ।
शान्तं भावमुपैहि संत्यज निजां कल्लोललोलां गतिं,
मा भूयो भज भङ्गुरां भवरतिं चेतः प्रसीदाधुना ॥५६॥

हे चित्त ! इस कुत्सित आश्रय वाले इन्द्रियार्थरूपी वन से विश्राम ले और जो अनेक दुःखों की शान्ति करने में अतिदक्ष (प्रवीण) कल्याण का मार्ग है उस शान्ति भाव को प्राप्त हो तथा तरङ्ग के समान अपनी चञ्चल गति को छोड़ दे और हे मन अब भी प्रसन्न होकर विनश्वर संसारसम्बन्धिनी आसक्ति को छोड़ कर परमानन्द का अनुभव कर ॥

जब परमार्थी पुरुष के हृदय से रागद्वेष छूटते हैं जब वह रागद्वेषादि दोष रहित इन्द्रियों द्वारा देखना सुनना आदि ठीक २ करने लगता है तब उस के आत्मा में एक प्रकार की अचल अनुपम शान्ति रूप प्रसन्नता उत्पन्न होती है जिस के होने से वह संसारी मनुष्यों को बहुत गिरी दशा में देखता चक्रवर्ती राजा को भी वह अपने से विशेष सुखी नहीं मानता और शान्तिसन्तोषादि से होने वाले सुख के सामने वास्तव में राज्य सुख तृण समान भी नहीं है इस लिये परमार्थी को प्रथम रागद्वेषादि को शिथिल करने का प्रबल उपाय करना आवश्यक है ॥

पुण्यैर्मूलफलैः प्रिये ! प्रणयिनि ! प्रीतिं कुरुष्वाधुना,
भूशय्यानववल्कलैरकरणैरुत्तिष्ठ यामो वनम् ।
क्षुद्राणामविवेकमूढमनसां यत्रेश्वराणां सदा,
वित्तव्याध्यविवेकविह्वलगिरां नामापि न श्रूयते ॥५७॥

हे कोमल प्यारी (बुद्धि) अब विना परिश्रम किये मिलने वाले पवित्र मूल फल, पृथिवी शय्या तथा नये बकलों के साथ प्रीति कर और उठ वन को चलें वन में उस स्थान पर रहेंगे जहां अविवेक से मूढ़ मन वाले तुच्छ धनवानों की धनरूप व्याधि के अविवेक से प्रमादयुक्त वाणियों का नाम भी नहीं सुन पड़ेगा ॥

परमार्थी पुरुष को मन में उत्पन्न हुए परमार्थ सम्बन्धी विचारों को एकान्त में बैठ २ कर दृढ़ करना चाहिये यही उस का प्रथम कर्त्तव्य है । वन कहने से ग्रन्थकार का अभीष्ट एकान्त से है और वह सापेक्ष ही रहता है इस लिये जहां

जिस को विघ्नकारक हेतु चित्त को आकर्षित न करें वही एकान्त वन है । जब तक उस को संसारी विषयों में दोष नहीं दीखने लगते और एकान्त में अकेला बैठकर विचार करने का लटका नहीं लगता तावत् परमार्थ की ओर नहीं चल सकता इस लिये ग्रामनगरादि में रहने के समय में ही सब संसार के सोने के समय स्वयं जाग २ कर विषय दोष और एकान्त वास करने के संकल्पों को पुष्ट करता रहे यही प्रधान कर्त्तव्य अपना समझे और अन्य समयों में उदासीन भाव से संसार के काम भी करता रहे ॥

मोहं मार्जयतामुपार्जय रतिं चन्द्रार्धचूडामणौ,
चेतः स्वर्गतरङ्गिणीतटभुवामासङ्गमङ्गीकुरु ।
को वा वीचिषु बुद्बुदेषु च तडिल्लेखासु च स्त्रीषु च,
ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः ॥५८॥

हे चित्त मोह को छोड़ कर जिन की शिखा में अर्ध चन्द्रकलारूप मणि विराजमान है उन शिव जी में भक्ति कर एवं गङ्गातट के वृक्षों के नीचे विश्राम ले क्योंकि तरङ्गों, बुलबुले, बिजुली की चमक, स्त्रियां, अग्नि की लपट, सर्प तथा नदियों के वेगों में कौन विश्वास है ॥

परमार्थी पुरुष को अत्यावश्यक है कि वह एकान्त शुद्ध स्थानों में बैठ २ कर परमेश्वर में भक्ति बढ़ावे और इसी मार्ग में चलता हुआ अपना परम कल्याण होने का विश्वास करे किन्तु बिजुली के तुल्य चमक वाली स्त्रियों सम्बन्धी जल बुद्बुद के तुल्य विषय भोगकी तरङ्गों में ढूढ सुख मिलने वा अपने कल्याण होने का कुछ भी विश्वास न रक्खे । क्योंकि जो स्वयं ही चलायमान अनित्य नाशवान् है वह दूसरों का कल्याण क्या करेगा ? ॥

अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणात्याः,
पृष्ठे लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम् ।
यद्यस्त्येवं कुरु भवरसस्वादने लम्पट त्वं,
नोचेच्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ ॥ ५९ ॥

सामने चतुर गवइये गाते हों दहिने बायें दक्षिण देश के सरस कवि लोग काव्य सुनाते हों और पीछे चौंर (चंवर) ढुराने वाली सुन्दर स्त्रियों की लीला

परिणति अर्थात् कङ्कणों की मधुर झन झनाहट होती हो तो ऐसी सामग्री पाने पर सांसारिक विषय में लम्पट हे चित्त तू विषयभोग में प्रवृत्ति कर नहीं तो स्थिर निर्विकल्प समाधि में प्रवेश कर ॥

जब कि संसार में विषयसुखभोग के लिये सर्वोपरि उत्तम से उत्तम साधन विद्यमान हों तो भी परमार्थ सम्बन्धी समाधिसुख के किसी अंश के साथ संसारी सुख की तुलना नहीं हो सकती तो जिन के निकट विषयसुखभोग के बहुत निकृष्ट साधन हैं वे परमार्थ के आनन्द से सर्वथा अनभिज्ञ होने की दशा में ही विषयों में फसे रह सकते हैं क्योंकि उच्चाधिकार मिलता देखकर कोई भी विचारशील नीचे अधिकार पर रहना स्वीकार नहीं करता । इस लिये विषय भोग के साधारण साधनों के मिलने पर भी वहीं फसे रहना बड़ी मूर्खता है ॥

विरमत बुधा योषित्संगात्सुखात्क्षणभङ्गुरात्,
कुरुत करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसंगमम् ।
न खलु नरके हाराक्रान्तं घनस्तनमण्डलं,
शरणमथवा श्रोणीबिम्बं रणन्मणिमेखलम् ॥६०॥

हे बुद्धिमान् पुरुषो ! स्त्रियों के सङ्ग तथा क्षणभङ्गुर सुख को छोड़ कर दया, मित्रता तथा प्रज्ञारूप वधूजन (बहू) का संगम करो क्योंकि नरक में हारादिभूषणयुक्त स्त्रियों का कठोर स्तनमण्डल एवं शब्द करती हुई मणि मेखला वाला नितम्बबिम्ब सहायक नहीं होगा ॥

प्रत्येक मनुष्य को यह सदा ही सोचना और मानना चाहिये कि गृहाश्रमादि में स्त्री पुत्रादि के साथ रहता हुआ भी अपने धर्म सम्बन्धी विचारों को विषयभोग रूप तृष्णा नदी में सर्वथा न डुबा देवे किन्तु यह निश्चय मानता रहे कि स्त्री आदि के पोषणार्थ वा सुखभोग की विशेषता के लिये जो कुछ धर्मविरुद्ध काम मैं करूंगा इस का फल मुझे अवश्य ही भोगने पड़ेगा मेरा कोई सहायक जन्मान्तर में न होगा इस कारण धर्म को कदापि न भूले और विषयभोग की वासना को क्रमशः शिथिल करता जावे ॥

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं,
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम् ।

तृष्णास्त्रोतो विभङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा,
सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः ॥६१

प्राणियों की हिंसा से निवृत्ति, दूसरों के धन हरण में संयम, सत्य भाषण, यथावसर शक्त्यनुसार दान करना, दूसरों की स्त्रियों की बातों में चुप रहना, तृष्णा रूप सोत को तोड़ना, गुरुजनों में नम्रता रखना और प्राणिमात्र पर दया करना ये सब बातें विना विवाद के सब शास्त्रों में सामान्य अर्थात् सर्वतन्त्र सिद्धान्त हैं और ये ही कल्याण अथवा श्रेष्ठ पुरुषों का मार्ग हैं ॥

(यह श्लोक नीतिशतक में लिखा गया है और इस का विशेष सम्बन्ध भी वैराग्यशतक के साथ नहीं दीखता । वास्तव में श्लोक का आशय बहुत अच्छा और वैराग्य के लिये भी कुछ २ उपयोगी है ही और अन्य पुस्तक में लिखा छपा भी देखा इस से यहां छपा दिया गया पर इस का विशेष सम्बन्ध नीतिशतक से ही है ॥)

मातर्लक्ष्मि भजस्व कंचिदपरं मत्काङ्क्षिणी मास्मभू-
र्भोगेभ्यः स्पृहयालवो नहि वयं का निःस्पृहाणामसि ।
सद्यः स्यूतपलाशपत्रपुटिकापात्रे पवित्रीकृते,
भिक्षासक्तुभिरेव सम्प्रति वयं वृत्तिं समीहामहे ॥६२॥

हे लक्ष्मी माता ! अब तू अन्य किसी पुरुष का सेवन कर हमारी आकाङ्क्षा मत रख क्योंकि हम भोगों को चाहने वाले नहीं हैं । निःस्पृह विरक्त पुरुषों के साथ तेरा क्या सम्बन्ध (नाता) है ? अर्थात् कुछ नहीं उन की दृष्टि में तू अति तुच्छ है । पलाश के हरे पत्तों के सींये हुए दौना रूप पवित्र पात्र में भीख के सत्तुओं से अब हम अपना जीवन निर्वाह करना चाहते हैं ॥

जब विरक्त पुरुष के मन में धनादि ऐश्वर्य भोग की वासना जागे वा विरक्त दशा में एकान्त घूमते हुए भी कहीं धनादि सम्पत्ति मिले और उस की ओर मन लुभाये तो अपने चित्त में ऐसी दृढ़ कल्पना करे कि मैं तृष्णा लोभ को छोड़ चुका मुझे काङ्क्षा नहीं रही इस से धनादि का मेरे साथ अब कुछ सम्बन्ध नहीं है अब मुझे होने वाली वासना वा मिलने वाला धन किसी लोभी को मिले और मेरा विचार यही दृढ़ रहे कि दौना आदि में सत्तू आदि मांग कर खाया करूं ऐसी प्रार्थना ईश्वर से करता रहे तो वैराग्य दृढ़ होता रहेगा ॥

यूयं वयं वयं यूय, मित्यासीन्मतिरावयोः ।
किं जातमधुना येन यूयं यूयं वयं वयम् ॥ ६३ ॥

जो तुम हो सो हम हैं और जो हम हैं सो तुम हो यह हम दोनों की बुद्धि थी परन्तु हे मित्र ! न जाने अब क्या हो गया कि जिस से तुम तुम्हीं हो और हम हमी हैं ॥

संसारी दशा में रहने पर स्त्री वा किन्हीं मित्रादि के साथ ऐसी गाढ़ प्रीति हो जाती है कि हमने किया वा खाया सो तुमने खाया वा तुमने किया सो हमने किया हम तुम भिन्न २ दो नहीं एक ही हैं पर विरक्त का कोई मित्र नहीं रहता शत्रु मित्रादि में भेदभाव मिट जाता वह सब को समान दृष्टि से देखता है ? तब कोई पूर्वावस्था का मित्र मिल जाय तो वह वा विरक्त पुरुष कहे वा सोचे कि देखो कैसी विलक्षण दशा बदल गयी कि जो इस का राग रूप बन्धन सर्वथा छूट गया ईश्वर की कृपा है ॥

बाले ! लीलामुकुलितममी मन्थरा दृष्टिपाताः,
किं क्षिप्यन्ते विरम विरम व्यर्थ एष श्रमस्ते ।
सम्प्रत्यन्ये वयमुपरतं बाल्यमास्था वनान्ते,
क्षीणो मोहस्तृणमिव जगज्जालमालोकयामः ॥ ६४ ॥

हे सुन्दरि (बाले !) लीला से थोड़े खुले नेत्र के कुटिल कटाक्षों को हमारे ऊपर क्यों फेंकती है, ? ठहर ठहर तेरा यह परिश्रम व्यर्थ है क्योंकि इस समय हम और के और हो गये हैं, बाल्य तथा यौवनावस्था समाप्त होगयी वन को निवासस्थान बनाया, मोह क्षीण होगया अतएव अब हम इस जगत् रूप जाल को तृणसमान तुच्छ देखते वा जानते हैं ॥

मनुष्य के विरक्त होजाने पर भी किसी अच्छी युवति के देखने वा स्मरण आने से विषयवासना जो अनादिकाल से हृदय में दृढ़ स्थिति कर चुकी है जागे तो वह ऐसा स्मरण वा विचार मन में करे कि मैं अब संसार को छोड़ विरक्त होगया विषयभोग का स्मरण मेरा काम नहीं है जिस को त्याग दिया उस को फिर मन में लाना वमन किये को फिर खाने वाले वान्ताशी के तुल्य है । इसी लिये अन्त्यावस्था में एकान्त सेवन मैंने स्वीकार किया है अब अज्ञानान्धकार को त्याग संसारी भोगों को तृणवत् मानना मेरा कर्त्तव्य है इत्यादि विचार चला

कर विषयभोगवासना को चित्त से हटा देना चाहिये और ठीक विचार बंधने से अवश्य हठ सकती है ॥

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिन्दीवरदल-
प्रभाचोरं चक्षुः क्षिपति किमभिप्रेतमनया ।
गतो मोहोऽस्माकं स्मरकुसुमवाणव्यतिकर-
ज्वलज्ज्वाला शान्ता तदपि न वराकी विरमति ॥ ६५ ॥

यह बाला (सुन्दरी) मेरे ऊपर अति सुन्दर कमल पत्र की शोभा को चुराने वाले कटाक्षों को निरन्तर फेंकती है न जाने इस का क्या अभिप्राय है । हमारा मोह (अज्ञान) जाता रहा और कामदेव के पुष्पबाणों से जलती हुई ज्वाला भी शान्त हो गई तो भी वराकी (विचारी) कटाक्षपात किये विना नहीं ठहरती ॥

जिन कामों को मनुष्य सहस्रों वार बराबर करता आया है उन की सूक्ष्म वासना विरक्त होने पर भी अवश्य रहती हैं इसी लिये योग भाष्य में कहा है कि (सूक्ष्मास्तुमहाप्रतिपक्षाः) सूक्ष्म विषयवासनारूप रस्सियों की प्रबलता हठाने के लिये बड़ा प्रबल उपाय करना चाहिये । विषयभोग की शक्ति के शिथिल हो जाने पर भी हृदय की वासना शिथिल नहीं होती इसीलिये विषय लालची श्रीमान् वृद्ध होने पर भी विवाह करने को तत्पर होते हैं । इस लिये मन में उठने वाले ऐसे संकल्पों को प्रबल विचारों से दबाना चाहिये ॥

रम्यं हर्म्यतलं न किं वसतये श्राव्यं न गेयादिकं,
किं वा प्राणसमासमागमसुखं नैवाधिकं प्रीतये ।
किन्तूद्भ्रान्तपतत्पतङ्गपवनव्यालोलदीपाङ्कुर-
च्छायाचञ्चलमाकलय्य सकलं सन्तो वनान्तं गताः ॥६६॥

क्या रहने के लिये रमणीय महल नहीं थे ? क्या सुनने योग्य गानादि निःशेष हो गया था ? क्या प्राणप्रिय इष्ट मित्रादि के समागम सुख से अधिक प्रसन्नता प्राप्त नहीं होती थी ? ये सब कुछ थे परन्तु इस सब सांसारिक सुखादि को भ्रान्त तथा उड़ते हुए पतङ्ग के पङ्खों के वायु से अति चलायमान दीप शिखा की छाया के समान समझ कर महात्मा लोग वन को चले गये वा चले जाते हैं ॥

संसार ईश्वर का अनन्त भण्डार है इस में से विषयभोग का सामान कभी चुक नहीं जाता । इस लिये सामान चुकने का हम बाट देखें तो मूर्ख हैं किन्तु

हम को यह शोचना चाहिये कि अति प्राचीन काल से अब तक सैकड़ों बड़े २ श्रीमान् ऋषि महर्षि राजा महाराजा आदि सब प्रकार विद्यमान उत्तम २ विषयभोग साधनों को छोड़ २ कर भी एकान्त में तप करने को चले गये उन को अवश्य कुछ संसारी सुखों से बढ़ कर आनन्द प्रतीत हुआ होगा वे सब मूर्ख नहीं थे तो हम भी एकान्त वास के सुख को भोगने का दृढ़ संकल्प करें ॥

किं कन्दाः कन्दरेभ्यः प्रलयमुपगता निर्झरा वा गिरिभ्यः,
प्रध्वस्ता वा तरुभ्यः सरसफलभृतो वल्कलेभ्यश्च शाखाः ।
वीक्ष्यन्ते यन्मुखानि प्रसभमपगतप्रश्रयाणां खलानां,
दुःखोपात्तालपवित्तस्मयवशपवननर्त्तितभ्रूलतानि ॥६७॥

क्या पहाड़ वा कन्दरों से मूल कन्द आदि नष्ट हो गये ? वा पहाड़ों से झरना झरने बन्द हो गये ? अथवा बकले वाले वृक्षों से रस वाले फलों को धारण करने वाली शाखायें टूट पड़ीं ? जो तुम थोड़े धन के प्राप्त होने के गर्व से नाचती हुई भौंओं वाले अविनीत खलों के मुखों को देखते हो ॥

जब सत्सङ्गादि वा वेद शास्त्रादि के निरन्तर देखने सुनने से हमारे हृदय के नेत्र कुछ खुलें हमे कुछ ज्ञान हो और एकान्त सेवन की ओर ध्यान जाने से यह भय हो कि घर छोड़ एकान्त में जाने पर कहां रहेंगे खाने पीने पहिरने को क्या वा कहां से मिलेगा तो शोचें कि ईश्वर की सृष्टि में सर्वत्र कन्द मूल फल आदि होते नदी झरने तालाव आदि भी होते हैं सैकड़ों पशु पक्षी आदि वनवासी भी ईश्वर के इसी भण्डार से खाते पीते हैं । और निकृष्ट प्रकृति वाले मनुष्यों के सङ्ग से सदा कुछ न कुछ बुरी वासना ही बढ़ती हैं ऐसा विचार कर एकान्त में वसने के संकल्प को दृढ़ करता रहे ॥

गङ्गातरङ्गकणशीकरशीतलानि,
विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि ।
स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि,
यत्सावमानपरपिण्डरता मनुष्याः ॥ ६८ ॥

गङ्गा की तरङ्गों के छोटे २ छींटों से शीतल तथा विद्याधरों के बैठने से सुन्दर शिला वाले हिमालय पर्वत के स्थान क्या नष्ट हो गये हैं ? जो मनुष्य ऐसे सर्वोत्तम स्थानों को छोड़ कर अपमान सह कर पराये ग्रास में प्रीति रखते हैं ॥

यदा मेरुः श्रीमान्निपतति युगान्ताग्निनिहतः,
समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरनिकरग्राहनिलयाः ।
धरा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता,
शरीरे का वार्ता करिकलभकर्णाग्रचपले ॥ ६९ ॥

जब प्रलयकाल की अग्नि का मारा मेरु पर्वत गिर जाता है तथा अनेक जल जन्तु मकर ग्राह आदि के स्थान समुद्र भी सूख जाते हैं एवं पहाड़ों के पगों से पकड़ी (थांभी) हुई भी पृथिवी भी नष्ट हुए बिना नहीं रहती फिर हाथी के बच्चे के कान की कोर के समान चञ्चल शरीर क्या बना रहेगा ?॥

संसार में जो बड़े २ पदार्थ निरयसे दीखते हैं जिन को हम लोग पीढ़ी पर पीढ़ी परम्परा से ऐसे ही सुनते आते हैं कि यही पृथिवी वे ही पहाड़ आदि बने हैं जब इन सब का ही एक २ दिन नियत समय अवश्य प्रलय होता है तो शरीर हमारा जिस की उत्पत्ति थोड़े काल से हुई है उस से पहिले नहीं था क्या कभी बना रह सकता है ? जिस को सहाल २ कर अच्छा रखने में ही सब जन्म हम बिताये देते हैं इस से शरीर को हम सदा अनित्य मानें तो भावी कल्याण के लिये उद्योग कर सकते हैं ॥

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।
कदा शम्भो ! भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥७०॥

संसार सम्बन्धी सब विषयों की इच्छा को छोड़ कर अकेला शान्तचित्त तथा हाथ को पात्र और दिशाओं को वस्त्र बनाकर हे शिव ! कर्मों की वासनाओं के निर्मूल करने में समर्थ मैं कब होऊंगा ॥

सदा परमेश्वर से परमार्थ सम्बन्धी कर्त्तव्य की प्रार्थना करता रहे कि हे परमात्मन् ! मैं अपने भावी कल्याण के लिये ग्रामादि में होने वाले खान पान आदि के अच्छे २ साधनों की अभिलाषा छोड़ किसी अनित्य मनुष्यादि को अपना सहायक न मानता हुआ संसार में बन्धन कराने वाली कर्म वासनाओं का छोड़ने वाला शान्त सुखी होऊं ऐसी बुद्धि और शक्ति मुझे दीजिये ॥

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं,
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किम् ।

सम्मानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं,
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ॥७१॥

यदि मनुष्य ने सब कामों को सिद्ध करने वाली लक्ष्मी पाई तो क्या? यदि शत्रुओं के शिर पर पग दिया तो क्या? यदि धनादि पदार्थों से मित्रों का सन्मान किया तो क्या? यदि शरीरधारियों का शरीर कल्पभर स्थित रहा तो क्या?॥

धन की यथेष्ट प्राप्ति, शत्रुओं को दबा कर वश में करना, मित्रों को सन्तुष्ट करना और सीमा से अधिक जीवित रहना ये सब काम यद्यपि जिन के निकट कुछ धनादि नहीं और धर्म वा परमार्थ का जिन में लेश भी नहीं जो बहुत अल्पकाल में शरीर छोड़ जाते हैं उन की अपेक्षा यथेष्ट धनादि का प्राप्त होना बहुत बड़ा काम है तथापि परमार्थ की ओर चलने वाले को जो अधिकार वा सुख मिल सकता है उस के सामने यह सभी तृणमात्र भी नहीं है॥

जीर्णा कन्था ततः किं सितममलपटं पट्टसूत्रं ततः किमेका भार्य्या ततः किं हयकरिसुगणैरावृतो वा ततः किम्।
भक्तं भुक्तं ततः किं कदशनमथवा वासरान्ते ततः किं,
व्यक्तज्योतिर्न वान्तर्मथितभवभयं वैभवं वा ततः किम् ॥७२॥

जो पुरानी कथरी धारण की तो क्या वा निर्मल श्वेत वस्त्र धारण किया तो क्या, अथवा दुकूल (दुशाला) धारण किया तो क्या जो सुन्दर घोड़े वा हाथियों के समुदाय वाला हुआ तो क्या यदि भात खाया तो क्या और जो दिन के अन्त में सन्ध्या समय रूखासूखा खाया तो क्या जिस मनुष्य ने संसार से छुड़ाने वाले चेतनस्वरूप परमात्मा का आराधन न किया और बड़ा ऐश्वर्य्य पाया तो क्या॥

वास्तव में कोई मनुष्य संसार में निकृष्ट से निकृष्ट भोजन वस्त्र धनादि सामान पाकर दूसरों के देखने में कष्ट से भी निर्वाह करता रहे पर यदि भविष्यत् काल में आने वाली अनन्त विपत्तियों के छुड़ाने के लिये परमेश्वर का आराधन कर लेवे और जितेन्द्रिय हो काम क्रोध लोभादि के प्रवाह को शिथिल कर परमार्थ की ओर चल जावे तो वह चक्रवर्त्ती राजा से भी बड़ा है॥

भक्तिर्भवे मरणजन्मभयं हृदिस्थं,
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः।

संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ता,
वैराग्यमस्ति किमतः परमर्थनीयम् ॥ ७३ ॥

महादेव में भक्ति, हृदय में मरण और जन्म से होने वाला भय, वस्तुवर्ग में स्नेह का न रहना, चित्त में कामदेव के विकार का उत्पन्न न होना, संसर्ग दोष से रहित निर्जन वन में वास और संसारिक सब पदार्थों से विरक्तता हो तो फिर योगी जन को परमेश्वर से मांगना शेष क्या रह गया अर्थात् कुछ भी नहीं॥

यह छः प्रकार की संपत्ति वा इन छः साधनों का ठीक २ होना परमार्थ सिद्धि का पूरा सामान है। जो कोई यह सोचता है कि परमार्थ की ओर चलने के लिये कोई निज [खास] समय देश स्थान और अवस्था वा वेष होगा तभी यह सब होगा वह कुछ नहीं कर सकता किन्तु संसार के काम करता हुआ ही पुरुष धीरे२ क्रमशः परमेश्वर की भक्ति जन्म मरण से भय, राग की न्यूनता, इन्द्रियों को जीतना एकान्त सेवन और चित्त में वैराग्य को स्थान देता रहे तो पीछे समय पाकर संन्यास वेष धारण करके भी इन को ठीक २ पुष्ट करके मुक्ति का अधिकारी हो सकता है वैसे तो सैंकड़ों शिर मुड़ाये कपड़े रंगे धन प्रतिष्ठादि के लालची अब भी फिरते ही हैं॥

तस्मादनन्तमजरं परमं विकासि,
तद्ब्रह्म चिन्तय किमेभिरसद्विकल्पैः ।
यस्यानुषङ्गिण इमे भुवनाधिपत्य-
भोगादयः कृपणलोकमता भवन्ति ॥ ७४ ॥

हे मन ! उस अनन्त सर्वव्यापक जन्ममरण जरादि रहित परम प्रकाशस्वरूप परमात्मा का ध्यान कर, इन निरर्थक संसार सम्बन्धी झूठे विकल्पों में क्यों पड़ता है स्मरण रख कि जिन चक्रवर्ती राज्यादि को लोभी मनुष्य बड़ा भोग वा भोग साधन मानते हैं वे सब परमात्मा की आराधना के छोटे २ फल हैं॥

वास्तव में मनुष्य जब तक जिस अधिकार के महत्त्व को नहीं जान पाता तभी तक वह उस की ओर नहीं झुकता। परमेश्वर से ठीक मेल मित्रता करने वा उस की आराधना के अधिकारी मनुष्य अब नहीं दीखते वास्तव में परमेश्वर की ओर चलने वाला कोई यथार्थ में हो तो वह चक्रवर्ती राजा से भी बहुत ऊंची कक्षा का अधिकारी सर्वांश में होता है। अब तो परमेश्वर की ओर

चलने का बहाना मात्र करने वाले संन्यासादि वेषधारी रह गये सच्चा ईश्वर भक्त कोई नहीं दीखता जिस का उच्चाधिकार वा प्रताप सब को मानने पड़े । इसी से चतुर्थाश्रम नीच समझ लिया गया ॥

पातालमाविशसि यासि नभो विलङ्घ्य,
दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानस ! चापलेन ।
भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मनीनं,
तद्ब्रह्म न स्मरसि निर्वृत्तिमेषि येन ॥ ७५ ॥

हे मन ! तू अपनी चञ्चलता से पाताल में प्रवेश करता, आकाश का भी उल्लङ्घन कर ऊपर जाता, दशो दिशाओं में अपनी चपलता से मारा २ फिरता है परन्तु तू भूल से भी कभी आत्मा का परमहित साधक निर्मल ब्रह्म का स्मरण नहीं करता जिस से आवागमनरूप परम दुःख से छूटकर परमानन्द मुक्ति सुख को प्राप्त हो ॥

वास्तव में मन बड़ा चञ्चल है उस को अपने कल्याणार्थ चारों ओर भागने से घेर २ कर नित्य २ निरन्तर प्रबल उपायों से परमेश्वर की ओर लगाता रहे तो बहुत काल में जाकर जब मन की अधिकांश शक्ति ईश्वराराधन में व्यय होने लगे तब जो इस को सुख वा आनन्द प्राप्त हो सकता है वहकहने और लिखने में नहीं आता इस लिये जो बड़े २ महाकष्टों से बच के अपना कल्याण चाहे वह मन को वश में करने का आरम्भ करे ॥

रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसो मत्वाऽबुधा जन्तवो,
धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तत्क्रियाः ।
व्यापारैः पुनरुक्तभुक्तविषयैरेवंविधेनामुना,
संसारेण कदर्थिताः कथमहो मोहान्न लज्जामहे ॥ ७६ ॥

मूर्ख प्राणी वही रात्रि और वही दिन है ऐसा मान कर अनेक कार्य्यों का आरम्भ करते हैं और उन्हीं व्यापारों में आसक्त रहते हैं कि जिन को वारवार किया भोगा है इस प्रकार की संसार सम्बन्धिनी लीला से नचाये हुये हम शोक है कि अज्ञान वश लज्जित भी नहीं होते अर्थात् संसारिक विषयों से कुछ भी विरक्तता धारण नहीं करते ॥

शोचने से प्रतीत होता है कि हम को बड़ा प्रचण्ड अज्ञानान्धकार घेर रहा है। दिन महिने ऋतु वा वर्ष बीतने पर भी हम को चेत नहीं होता, गतवर्ष के वे ही दिन जाड़े वा गर्मी फिर आगये वही प्रबन्ध वा उपाय फिर करने चाहिये हम वे ही तो हैं इत्यादि। पर वास्तव में शोचें तो वह समय फिर नहीं आता, हम इसी शरीर से फिर बालक वा युवा नहीं हो सकते संसार के सब भाव बदलते २ अन्त में हम जीर्ण हो २ शरीर त्याग देते हैं। हमारी बुद्धि अवस्था वा शक्ति प्रतिदिन परिवर्त्तित होती जाती है काम भी बदलते जाते हैं फिर इतने स्थूल अज्ञान में पड़े रहने पर भी हम को लज्जा नहीं आती यह क्या थोड़ा आश्चर्य है ? ॥

मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता,
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः ।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासङ्गमुदितः,
सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृपइव ॥ ७७ ॥

भूमि ही सुन्दर रमणीय शय्या (खाट), बांह ही बड़ी तकिया, आकाश ही तम्बू, अनुकूल वायु ही पंखा, प्रकाशमान चन्द्रमा ही दीपक और विरक्तता रूप ही जिस की स्त्री है इतनी सम्पत्ति को पाकर योगी मुनिजन बड़े ऐश्वर्य्यवान् राजा के समान सुख और शान्ति पूर्वक शयन करते हैं ॥

जब योगिराजों को तत्त्वज्ञान हो जाता है तब वे राजादि श्रीमानों के सुख साधनों में बड़ी २ विपत्ति वा विघ्न भी देखते पर अपने हृदय में आए परम सन्तोष और वैराग्य से स्वीकार किये भू शय्यादि साधनों में कोई बाधा नहीं देखते इस कारण वे राजाओं से भी अच्छी अपनी दशा मानते हैं और अपने अन्तिम परिणाम सुख फलसे तो चक्रवर्ती राज्य को भी बहुत तुच्छ समझ लेते हैं पर जिन को तत्त्वज्ञान का लेश भी नहीं उन के ध्यान में यह कभी नहीं आता ॥

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन् महाशासने,
तल्लब्ध्वाशनवस्त्रमानघटने भोगे रतिं मा कृथाः ।
भोगः कोऽपि सएक एव परमो नित्योदितो जृम्भते,
यत्स्वादाद्विरसा भवन्ति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः ॥७८॥

हे आत्मन् ! उस सर्वोत्तम परब्रह्म को प्राप्त होकर भोजन वस्त्र प्रतिष्ठा वाले भोग में प्रीति मत कर क्योंकि उस ब्रह्म की प्राप्ति वा ज्ञान के होने पर

तीनों लोकों का राज्य भी फीका है। भोग वही एक प्रकाशस्वरूप चिरस्थायी मुक्ति सुख है जिस के स्वाद लिये पीछे त्रिलोकी के राज्यादि भोग सर्वथा फीके पड़जाते हैं॥

जैसे किसी चक्रवर्त्ती राजा से जिस पुरुष का मेल वा विशेष प्रीति हो जाती था उस महाराजाधिराज [शहंशाह] की दृष्टि में जो मान्य हो जाता है उस को साधारण राजा रईसों के साथ मेल करना प्रीति बढ़ाना फीका जान पड़ता है इसी से वह माण्डलिकादि से भी प्रीति करने की रुचि नहीं करता वा यों कहो कि बड़ा अधिकार वा सुख मिलता हो तो उस से नीचे अधिकार और सुख को सभी निकृष्ट समझते हैं। वैसे ही जिस को परमेश्वर के मेल से होने वाला अधिकार वा आनन्द प्रतीत होने लगता है वह संसार भर के राज्य को भी तुच्छ समझने लगता है। परन्तु जिस को बड़े सुख वा अधिकार का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं उस की दृष्टि में वह बड़ा भी नहीं होता॥

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः,
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः।
मुक्त्वैकं भवबन्धदुःखरचनाविध्वंसकालानलं,
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलनं शेषा वणिग्वृत्तयः॥७९॥

वेद, स्मृति, पुराण तथा अतिविस्तृत शास्त्रों के पढ़ने से क्या एवं स्वर्गरूप ग्राम की कुटी (झोंपड़ी) रूप फल को देने वाले कर्मकाण्ड की क्रियाओं के आडम्बर से भी कोई विशेष लाभ नहीं है। हमारी समझ में तो संसार सम्बन्धी दुःख परम्परा के समूल नाश करने में प्रलयाग्नि के समान अपने आत्मा के मुक्ति पद के प्रवेशज्ञान को छोड़ कर और सब बनियों का व्यापार है॥

यद्यपि वेद शास्त्रादि निरन्तर पठनपाठन वा स्वर्ग भोग के लिये काम्य यज्ञादि कर्मों में जन्म भर नित्य लगे रहना काम क्रोध लोभादि में सर्वथा फसे हुए मनुष्यों की अपेक्षा बहुत अच्छा है वा सर्वथा निर्धनता की अपेक्षा सहस्रपति होना भी बहुत अच्छा है तथापि जैसे असंख्य धन मिलने की अपेक्षा सहस्राधीश होना महानिकृष्ट है वैसे स्वर्ग सुख भोग की योग्यतासम्पादन करने वाला मुक्ति सुख की ओर झुकने वाले की अपेक्षा महानिकृष्ट है। वेदादि को पढ़ जान के मुक्ति की योग्यता प्राप्त कर सकता हो वह केवल पठनादि में ही सदा न पड़ा रहे। अल्पज्ञ के लिये तो पढ़ना अच्छा अवश्य ही है॥

आयुः कल्लोललोलं कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्री-
रर्थाः संकल्पकल्पा घनसमयतडिद्विभ्रमा भोगपूराः ।
कण्ठाश्लेषोपगूढं तदपि च न चिरं यत्प्रियाभिः प्रणीतं
ब्रह्मण्यासक्तचित्ता भवत भवभयाम्भोधिपारं तरीतुम् ॥८०

आयु जल तरङ्गसा चञ्चल है, जवानी की शोभा भी स्वल्प काल ही रह
वाली है संसारी धनादि पदार्थ मनके संकल्पों के समान क्षणिक हैं भोगों के स
मुदाय भी वर्षा काल के मेघ की बिजुलीसम चलायमान हैं और प्यारी स्त्रि
को जो गले से लगाना है वह भी चिरस्थायी नहीं इस लिये हे मनुष्यो ! य
संसारसम्बन्धी भयरूप समुद्र के पार जाना चाहते हो तो सच्चिदानन्द में चि
को लगाओ ॥

यद्यपि आयु आदि वास्तव में अनित्य हैं इसी लिये इन को प्रायः लो
अनित्य ही मानते और कहते हैं तथापि आयु आदि को नित्य मान कर जै
व्यवहार होना चाहिये वैसा करते अर्थात् जीवनादिसम्बन्धी कामों में अप
सब कर्त्तव्यों को भूल कर ऐसे लिप्त हो जाते हैं कि जानो यौवनादि सदा ऐ
ही बना रहेगा । वस्तुतः इसी का नाम प्रमाद है । इस विषयवासना स
न्धिनी गाढनिद्रा से जागने जगाने के लिये बड़ा प्रबल उपाय करने वालों
कोई २ कभी २ कुछ २ जागता है और जिन का जागने की ओर ध्यान भी नह
ऐसे तो असंख्य प्राणी अनादि काल से भराभर सो रहे हैं उन के जागने क
किंचित् भी आशा नहीं है ॥

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं, किं लोभाय मनस्विनः ? ।
शफरीस्फुरितेनाब्धेः, क्षुब्धता जातु जायते ॥ ८१ ॥

जैसे मछली के उछलने से समुद्र को क्षुब्धता कदापि नहीं होती उसी प्र
कार ब्रह्मविचारवान् को संसार वा संसारसम्बन्धी परमोत्कृष्ट पदार्थ लुभाने के
पर्य्याप्त नहीं अर्थात् ब्रह्मज्ञानी पुरुष संसारी तुच्छ पदार्थों के लोभ में आक
ब्रह्मज्ञान से चित्त को कदापि नहीं हटाता ॥

जैसे छोटे २ कुआ तालाव आदि जलाशयों का छोटी २ मछलियों के कूदने
फांदने से भी जल क्षुब्ध-चलायमान हो जाता है वैसे अधिक विस्तीर्ण अथाह

समुद्र में उन्हीं मछलियों की कूदा फांदी से जल में इतनी न्यून हिल चल होती है जो समुद्र की गम्भीरता के देखे न हुई सी मानी जाती है । जैसे साधारण मनुष्यों को जिन छोटे विषय भोगों का लोभ खेंचता व्याकुल कर देता है वैसे उन्हीं भोगों का लोभ अति महान् ईश्वर के आश्रय से महती गम्भीरता को प्राप्त महात्मा लोगों को इतना न्यून खेंच पाता है जिसको न खेंचना ही कह सकते हैं॥

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंस्कारजनितं,
तदा दृष्टं नारीमयमिदमशेषं जगदपि ।
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकाञ्जनजुषां,
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म तनुते ॥ ८२ ॥

जब हम को कामदेवरूप अन्धकार के संस्कार से उत्पन्न हुआ अज्ञान था तब यह सम्पूर्ण संसार नारीमय (स्त्रीरूप) दीखता था अब अतिउत्तम विवेकरूप अञ्जन के सेवन करने से हमारी दृष्टि स्वच्छ सम होगई है अतएव तीनों लोक परब्रह्म को विस्तृत करते हैं अर्थात् अब हम संसार के यथार्थ स्वरूप को देखते हैं॥

मनुष्य के हृदय में जिस समय काम क्रोध लोभादि में से किसी की वासना प्रबलरूप से जागती है तब वह सब कर्त्तव्यों की ओर से अन्धा होकर दिन रात उसी के ध्यान में रहता शास्त्रों ग्रन्थों से भी उसी में सहायता लेता है । सर्वत्र उस को वही विषय दीख पड़ता है । परन्तु जब कामासक्ति नहीं रहती तो युवति वृद्धा, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, सब को समान देखने लगता और सब जगत् को देख २ परमेश्वर की महिमा चित्त में बढ़ाता है ॥

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या वनान्तस्थली,
रम्यः साधुसमागमः शमसुखं काव्येषु रम्याः कथाः ।
कोपोपाहितवाष्पबिन्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं,
सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते न किञ्चित्पुनः ॥ ८३ ॥

चन्द्रमा की किरणें सुन्दर होती हैं हरित तृण वाली वन की अकृत्रिम भूमि सुहावनी है . अच्छे पुरुषों का समागम अच्छा है . काव्यों में बड़ी मन लुभाने वाली कथायें हैं और क्रोध से निवेशित आंसुओं के बिन्दु से चञ्चल प्यारी स्त्री का मुख भी बड़ा अच्छा लगता है परन्तु चित्त में पदार्थों का यथार्थस्वरूप अनित्यता का ज्ञान हो जाने पर कुछ भी सुन्दर नहीं लगता ॥

संसारी पदार्थों में जितनी रमणीयता है उस सब को जिस ने बनाया है उस परमात्मा की ओर जिन लोगों का ध्यान जब ठीक जाता है तब सर्वोपरि शान्ति सुख उस के शरणागत रहने में दीखने लगता और संसार के सुख हेतु सब रमणीय पदार्थ भी अनित्य नाशवान् दुःख हेतु दीखने लगते हैं इसी से वह संसारी भोगों से दिन २ विरक्त होता जाता है॥

भिक्षाशी जनमध्यसङ्गरहितः स्वायत्तचेष्टः सदा,
दानादानविरक्तमार्गनिरतः कश्चित्तपस्वी स्थितः।
रथ्याक्षीणविशीर्णजीर्णवसनैः संप्राप्तकन्थासखी,
निर्मानो निरहंकृतिः शमसुखाभोगैकबद्धस्पृहः॥ ८४॥

भीख मांग कर खाना, लोगों के मध्य में असंग रहना, स्वाधीन चेष्टा करना, देने लेनेसे निवृत्त मार्ग में रत रहना, सड़कों पर पड़े हुए फटे पुराने जीर्ण वस्त्रों की कथरी ओढ़ कर मान और अहङ्कार से पृथक् हुआ कोई ही तपस्वी शान्तिसुख की प्राप्ति के लिये बद्धपरिकर होता है॥

ये ज्ञान वैराग्य हो जाने के लक्षण हैं। ऐसी दशा में विरक्त को जो आनन्द होता है उस को वह स्वयं अपने आत्मा में जानता है किसी से कह भी नहीं सकता न कोई संसारी मनुष्य जान पाता है। इसी कारण उस आनन्द के लिये संसारी मनुष्यों में से प्रायः कोई भी उद्यत नहीं होता। विरक्त होना चाहे वह पहिले से मन में दृढ़ विचार करता रहे॥

मातर्मेदिनि तात मारुत सखे तेजः सुबन्धो जल,
भ्रातर्व्योम निबद्ध एष भवतामेष प्रणामाञ्जलिः।
युष्मत्संगवशोपजातसुकृतोद्रेकस्फुरन्निर्मल-
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमा लीये परे ब्रह्मणि॥ ८५॥

हे माता पृथिवी, हे पिता वायु, हे मित्र तेज, हे प्रियबन्धु जल, हे भाई आकाश आप सब पञ्च तत्वों के संग वश से हुए पुण्यजनित निर्मल ज्ञान से मोहान्धकार को छोड़ कर आप सब के सामने यह प्रणामाञ्जलि (हाथ जोड़ना) बांधता हूं और आप सब के अनुग्रह से ही पर ब्रह्म में लीन होता हूं॥

बुद्धिपर्यन्त प्रकृति वा जड़ कहाते हैं। चेतन आत्मा और जड़ प्रकृति का अतिसूक्ष्म सम्बन्ध है इसी का नाम बन्धन है। आत्मा के सम्बन्ध से सब भोगों

का अनुराग प्राकृत शरीर में होता है इस कारण भोगों से वैराग्य भी प्राकृत इन्द्रियों को ही होता है "प्रकृतेर्विरमे चेत्थं स्वायिनां के स्मरादयः" मनुष्य को चाहिये कि ध्येयाकार ब्रह्म में ध्यान लगाते समय प्राकृत शरीर के साथ सम्बन्ध को सर्वथा भुलावे वा छोड़े ॥

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्य्यः प्रयत्नो महान्,
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ? ॥ ८६ ॥

जब तक शरीर नीरोग और पुष्ट है जब तक वृद्धावस्था दूर है . जब तक इन्द्रियों की शक्ति न्यून नहीं हुई एवं जब लों आयु भी क्षीण नहीं हुआ तब तक ही बुद्धिमान् पुरुष को उचित है कि अपने कल्याण के लिये बड़ा प्रयत्न करे क्योंकि घर जलने पर कूप का खोदना उपयोगी नहीं होता ॥

मनुष्य धर्म वा परमार्थ सम्बन्धी कर्त्तव्य के लिये बहाने खड़े किया करता और टाला करता है कि इन २ कामों को समाप्त करके थोड़े दिन पीछे अमुक २ धर्म सम्बन्धी विचार करूंगा टालते २ जब मृत्यु का समय अति निकट आया देखता, वा सर्वथा अशक्त हो जाता वा किसी असाध्य रोग में ग्रस्त हो जाता है तब कुछ धर्म नहीं कर पाता और पछताता है कि हा ! आगे के लिये कुछ न कर पाया अब मैं चला अब क्या करूं ? पर पीछे पछताने से कुछ नहीं होता प्रथम से ही शोचना ठीक है * ॥

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं, केषांचिदेतन्मदमानकारणम् ।
स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये, कामातुराणामतिकामकारणम् ८८

ज्ञान, सत्पुरुषों के मान को बढाने और मद का नाश करने वाला होता है और वही असत्पुरुषों के मद और मान का प्रबल हेतु बनता है. जैसे एकान्त स्थान संयमी पुरुष के लिये मुक्ति चिन्तन वा ब्रह्म चिन्तन का हेतु होता और वही एकान्त देश कामी पुरुषों के प्रबल काम का उद्बोधक होजाता है ॥

---

* इस के आगे (नाभ्यस्ता भुवि०) इत्यादि एक श्लोक किन्हीं पुस्तकों में मिलता है हम ने स्पष्ट ही शृङ्गारशतक से सम्बन्ध देख कर उस को यहां नहीं छपाया वैराग्यशतक से उसका विशेषमेल नहीं है । विचार शील शोचलें-ह० भी० श०

यह श्लोक नीतिशतक की ओर अधिक झुकता है। वैराग्य के साथ यही सम्बन्ध है कि एकान्त सेवन विरक्त होने वाले के लिये प्रधान अङ्ग है परन्तु कामादि की सूक्ष्म वासना जो चित्त में प्राचीनतर काल से दृढ स्थिति कर चुकी हैं वे भी एकान्त में बैठने पर जागती हैं एकान्तसेवी विरक्त उनको अपना महाशत्रु समझ कर दबाने और नष्ट करनेका परमोद्योग करता रहे किन्तु भूल में रहेगा तो वैराग्य की ओर से हटा कर वासना रूप शत्रु अवश्य दबा लेंगे॥

जीर्णाएव मनोरथाः स्वहृदये यातं जरां यौवनं,
हन्ताङ्गेषु गुणाश्च बन्ध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना।
किं युक्तं सहसाभ्युपैति बलवान् कालः कृतान्तोऽक्षमी,
ह्याज्ञातं स्मरशासनाङ्घ्रियुगलं मुक्त्वास्ति नान्या गतिः ८९

सब मनोरथ अपने हृदय में ही जीर्ण हो गये, खेद है कि गुणज्ञ पुरुषों के बिना सब गुण अङ्गों में ही व्यर्थ रह गये और क्षमारहित सर्वनाशक बलवान् काल निकट चला आता है अस्तु हमने भी भलीभांति जान लिया कि महादेव जी के चरणाराधन को छोड़ दूसरा कोई कल्याण का मार्ग नहीं है॥

संसार में दृष्टि फैलाकर देखें तो प्रतीत होता है कि किसी की सब मनःकामना पूरी नहीं होती कामासक्ति की ओर ध्यान जाने पर वृद्ध भी चाहता कि यौवनावस्था फिर किसी प्रकार आजावे ऐसी ही अनेक असम्भव कामना भी किया ही करता है जो कभी किसी की पूरी हो ही नहीं सकतीं। जब उन असम्भव मनोरथों की पूर्त्ति का कोई उपाय नहीं देखता तो मोह शोक में निमग्न हो कर महादुःख भोगता है इस लिये मृत्युकाल को अति निकट आता देख परमेश्वर के शरणागत होने में ही सुख है॥

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभि,
क्षुधार्तः सञ्शालीन् कवलयति शाकादिवलितान्।
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधूं,
प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विपर्य्यस्यति जनः॥ ९०॥

जब मनुष्य का कण्ठ प्यास से सूखने लगता तब सुन्दर शीतल जल पीता है जब क्षुधा से पीडित होता तब शाक दाल आदि से लपेट कर भात

को खाता है इसी प्रकार जब कामदेव रूप अग्नि प्रचण्ड होता तब स्त्री को अत्यन्त हृदय से लगाता है । विचार का स्थान है कि ये एक २ व्याधि की औषध हैं परन्तु मनुष्यों ने इसे उलटा ही सुख मान रक्खा है ॥

यदि कोई मनुष्य संसार में रहता गृहाश्रम में अन्य धर्मसम्बन्धी काम करता हो तो जैसे सहज रोग क्षुधा पिपासा से पीड़ित होने की दशा में अन्न जल से निवृत्त कर लेता है वैसे काम के अधिक सताने पर काम रूप रोग की शान्ति कर लेने मात्र विचार से कभी २ संयोग करे तो वह सर्वथा लिप्त नहीं हो सकता । तथापि सर्वांश में क्षुधा पिपासा के साथ कामरोग की तुल्यता नहीं है क्योंकि कामाग्नि को विचार से शान्त कर लेने पर अधिक जीवित रह सकता पर क्षुधापिपासा की औषधि न मिले तो प्रायः जीवन नहीं रहता । इसी लिये सर्वथा ब्रह्मचारी रहने वाला मनुष्य सर्वोत्तम है । और काम सुख भोग में सर्वथा लिप्त की अपेक्षा काम का औषध मान शान्त कर लेने वाला भी अच्छा है ॥

स्नात्वा गाङ्गैः पयोभिः शुचिकुसुमफलैरर्चयित्वा विभो! त्वां,
ध्येये ध्यानं नियोज्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्य्यङ्कमूले ।
आत्मारामः फलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादात्स्मरारे, !
दुःखान्मोक्ष्ये कदाहं तव चरणरतो ध्यानमार्गैकप्रश्नः ॥९१॥

हे स्वामिन् कामदेव के शत्रु महादेव जी ! गङ्गाजल से स्नान कर के तथा तुम को पवित्र पुष्प फलों से पूज पर्वत की गुफा में पत्थर की शय्या पर बैठ तुम ध्यानयोग्य में ध्यान लगा गुरुवचन को मान आत्मा में प्रसन्न और फलाहारी होके ध्यानमार्ग का जिज्ञासु तुम्हारे चरणों में भक्ति रखता हुआ मैं कब आप की कृपा से इस संसार सम्बन्धी दुःख से छूटूंगा ? ॥

अपना सर्वथा कल्याण चाहने और सब विपत्तियों से बचने की इच्छा रखने वाला विरक्त पुरुष सदा अपना उद्योग उत्साह और विचार बढ़ाता रहे कि मेरी इतनी शक्ति और योग्यता बढ़े कि सर्वथा परमेश्वर के ध्यान में तत्पर रहने लगूं ॥

शय्या शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरूणां त्वचः,
सारङ्गाः सुहृदो ननु क्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः ।

येषां निर्झरमम्बुपानमुचितं रत्येव विद्याङ्गना,
मन्ये ते परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धो न सेवाञ्जलिः ॥ ९२ ॥

पर्वत की चट्टान जिन की शय्या, पर्वत की गुफा ही घर वृक्षों के वल्कल ही वस्त्र, हरिण ही मित्र, वृक्षों के कोमल फलों से भोजन का निर्वाह, झरना का स्वच्छ जल पान करना तथा विद्यारूपी स्त्री में जिन का प्रेम वा आसक्ति है एवं जो दूसरों के आगे सेवा बुद्धि से हाथ नहीं जोड़ते हैं मैं उन्हें अत्यैश्वर्य्यवान् मानता हूं ॥

वास्तव में ऐसे विरक्त मनुष्य परमोत्तम दशा में पहुंच जाते हैं विरक्त होने की इच्छा वाले ऐसी दशा में रह कर वैराग्य के सुख का अनुभव करने के लिये चेष्टा करें ॥

सत्यामेव त्रिलोकीसरिति हरशिरश्चुम्बिनीवच्छटायां,
सद्वृत्तिं कल्पयन्त्यां वटविटपभवैर्वल्कलैः सत्फलैश्च ।
कोऽयं विद्वान् विपत्तिज्वरजनितरुजाऽतीव दुःखासिकानां,
वक्त्रं वीक्षेत दुःस्थे यदि न बिभृयात्स्वे कुटुम्बेऽनुकम्पाम् ९३

महादेव जीकी शिखा में लहराती हुई तथा वट वृक्षों के फल और बकलों से सुन्दर जीवन निर्वाह कराती हुई गङ्गा नदी के होने पर यदि अपने दुःखी कुटुम्ब पर दया न करे तो कौन समझदार पुरुष विपत्तिरूप ज्वर से पैदा हुए रोग से अति अविश्वासपात्र स्त्रियों का मुख देखे अर्थात् कोई भी नहीं ॥

यदि विद्वान् पुरुष को संसार की अनित्यता ठीक २ वा अधिकांश प्रतीत हो जाने से विश्वास के साथ ज्ञान हो जाय कि मुझ को संसारी विषयभोग की वासना अब अपनी ओर नहीं खेंच सकतीं तो भी माता पिता कन्या पुत्रादि को बीच में छोड़ कर विरक्त न हो जावे क्योंकि वृद्ध माता पिता की जीवन पर्यन्त सेवा और पुत्रादि को समर्थ करना उस पर धर्मानुकूल ऋण है उस को चुकाये विना परमार्थ को भी सिद्ध नहीं कर सकेगा। इस लिये गृहाश्रम में स्त्री आदि से होने वाले कष्ट को सहता हुआ भी ऋणोद्धार अवश्य करे ॥

उद्यानेषु विचित्रभोजनविधिस्तीव्रातितीव्रं तपः,
कौपीनावरणं सुवस्त्रममितं भिक्षाटनं मण्डनम् ।

आसन्नं मरणं च मङ्गलसमं यस्यां समुत्पद्यते,
तां काशीं परिहृत्य हन्त ! विबुधैरन्यत्र किं स्थीयते ॥९४॥

उपवनों [बागीचों] में नाना प्रकार के भोजन बना कर खाना ही जहां अति कठिन तप है लंगोटी पहिनना ही सुन्दर वस्त्र, भीख मांग कर खाना ही जहां भूषण और मृत्यु का निकट आना ही जहां मङ्गल समान है ऐसी काशी को छोड़ पण्डित लोग अन्यत्र क्यों वसते हैं ॥

पूर्वकाल में वाराणसी शुद्ध ज्ञानी परमार्थ के मर्मज्ञ विद्वानों के समुदाय का प्रधान [हेड] निवासस्थान हो गया था । संस्कृत वेदादिशास्त्रों का मर्म जानने वाले अधिकांश लोग वाराणसी में ही रहते थे इससे परमार्थ सिद्धि के लिये सर्वोपरि सुगमता वहां मिल सकती थी । इसी से वह तीर्थ माना गया था पर अब वह बात नहीं रही । धूर्त्त चालाक [गुंडा—बदमाश] बहुत रहने लगे मद्य मांसभक्षण व्यभिचार बढ़ गया आधुनिक ग्रन्थों के रगड़े में पड़ कर वेद के उत्तम सिद्धान्त से बड़े २ पण्डित भी सर्वथा विमुख हो गये ॥

नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि,
स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः ।
चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितु-
र्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषं निःसीमशर्मप्रदम् ॥ ९५ ॥

अभी तुम से मिलने का समय नहीं है महाराज एकान्त में बैठे कुछ विचार कर रहे हैं अभी सोते हैं ड्योढ़ी पर से उठो जो तुम्हें यहां बैठा देखेंगे तो प्रभु हम पर क्रोध करेंगे इत्यादि वचन जिन के द्वार पर बोले जाते हैं उन्हें त्याग कर हे चित्त ! विश्वेश्वर परमात्मा की शरण में जा उस के द्वार पर कोई रोकने वाला तथा निर्दय कठोर वचन बोलने वाला नहीं है प्रत्युत वह द्वार असीम सुख को देने वाला है ॥

शोच कर देखने से ज्ञात होता है कि मनुष्य को परमेश्वर की ओर चलने में यदि कुछ रुकावट है तो वह केवल विषयभोगों की वासना ही है जो अपने चक्र पर चढ़ाये प्रायः प्राणियों को प्रत्येक समय घुमा रही है यदि इधर से उदासीनता हो रुकावट न रहे तो ईश्वर के निकट पहुंचने के लिये जैसा निष्कण्टक सीधा मार्ग है वैसा संसार के सब भोगों के संग्रह का मार्ग सुलभ नहीं जिस में सहस्रों विघ्न वा कण्टक प्रतिक्षण विद्यमान हैं ॥

प्रियसखि ! विपद्दण्डव्रातप्रतापपरम्परा-
तिपरिचपले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः खलः ।
मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलालवद्,
भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र विधास्यति ॥ ९६ ॥

हे प्यारी सखी ! जैसे कुशल कुम्हार बलपूर्वक मिट्टी का पिण्ड बनाकर चाक पर घुमाया करता है वैसे ही दुष्ट विधाता विपत्तिरूप दण्डे से चञ्चल चिन्तारूप चाक पर हमारे चित्त को बलपूर्वक घुमाता है । इस लिये दैव क्या करेगा यह हम नहीं जानते ॥

यहां विधि शब्द से सूक्ष्मरूप से संचित वासना नामक कर्म का ग्रहण जानो । मनुष्य को परम्परा से प्रारब्ध नाम कर्म ही संसार चक्र में घुमाया करते हैं उन को शिथिल करने का उपाय यही है कि संसार में फसाने वाले नये कर्म और संसारी भोगों के उद्देश को त्यागता जावे ॥

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे, जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि ।
तयोर्न भेदप्रतिपत्तिरस्ति मे, तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे ॥९७॥

जगदीश्वर महादेव और जगदात्मा विष्णु इन दोनो में मेरी कुछ भेदबुद्धि नहीं है तो भी जिन के मस्तक में नवीन चन्द्रमा विराजमान है उन्हीं में मेरी भक्ति प्रीति है ॥

महाराजा भर्त्तृहरिजी शैव थे इसी लिये ऐसा लिखा है पुराणों के संस्कार होने से भेदबुद्धि होने पर भी अभेद दिखाया है । वास्तव में वेद के सिद्धान्तानुसार परमेश्वर के उत्पत्ति स्थिति प्रलय ये तीन प्रधान काम हैं जिन को अन्य कोई नहीं कर सकता इन्हीं कामों से उस के तीन नाम हैं ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता विष्णु जगत् का धारण पालन स्थिति कर्त्ता और शिव वा रुद्र संसार का प्रलय करने वाला है किन्तु भिन्न २ तीन रूप नहीं हैं ॥

रे कन्दर्प ! करं कदर्थयसि किं कोदण्डटङ्कारवै,
रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथा जल्पसि ।
मुग्धे स्निग्धविदग्धचेपमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं,
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्त्तते ॥ ९८ ॥

अरे कामदेव ! अपने धनुष् की टङ्कार से अपने हाथ को वृथा परिश्रम क्यों देता है, हे कोयल ! कोमल और मीठे स्वर से व्यर्थ तू क्यों बोल रही है, हे स्त्री ! चिकने चतुर मीठे चञ्चल कटाक्षों को तू अब हमारे ऊपर मत फेंक क्योंकि हमारा चित्त चन्द्रशेखर महादेवजी के चरणों के ध्यानरूप अमृत का पान कर रहा है ॥

जब कोई पुरुष योगाभ्यासादि द्वारा परमेश्वर का ध्यान करने की ओर तत्पर होना चाहता है तब अतिदीर्घ काल से सूक्ष्मरूप से संचित विषयभोग की वासना भी जागतीं और ईश्वर की ओर चित्त लगाने में विघ्नरूप खड़ी होती हैं इस लिये विचाररूप दृढ़ उपाय से उन को दबा २ कर शिथिल करता रहे तो धीरे २ शक्तिहीन होकर वे वहीं शान्त हो जाती हैं ॥

कौपीनं शतखण्डजर्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी,
निश्चिन्तं सुखसाध्यभैक्ष्यमशनं शय्या श्मशाने वने ।
मित्रामित्रसमानतातिविमला चिन्तातिशून्यालये,
ध्वस्ताशेषमदप्रमादमुदितो योगी सुखं तिष्ठति ॥ ९९ ॥

सौ खण्ड (टुकड़े) वाली अतिजीर्ण लंगोटी पहिन, फिर वैसी ही जीर्ण सौ टुकड़े वाली कथरी ओढ़ सुखपूर्वक मिलने वाले भिक्षा के अन्न को खा, वन अथवा मरघट में शय्या बना कर, शत्रु मित्र में समानता रख अत्यन्त एकान्त हृदय वा स्थान में अतिपवित्र परमेश्वरविषयक चिन्ता करता हुआ सम्पूर्ण मद प्रमादादि को छोड़ कर योगाभ्यासी पुरुष अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है ॥

जब योगाभ्यास द्वारा परमेश्वर की प्राप्ति को परम कर्त्तव्य परमार्थी पुरुष समझलेता और उधर के आनन्द का स्वाद उस को आने लगता है तब फटे पुराने वस्त्र एकान्त भयङ्कर स्थान में वास और सब से रागद्वेष छोड़ने में उस को कुछ कठिनता नहीं जान पड़ती किन्तु उस दशा में योगी पुरुष को फटी लंगोटी आदि ही अच्छे लगते हैं ॥

भोगा भङ्गुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं भव-
स्तत्कस्यैव कृते परिभ्रमतरे लोकाः कृतं चेष्टितैः ।
आशापाशशतोपशान्तिविशदं चेतः समाधीयतां,
कामोच्छित्तिवशे स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः ॥१००॥

सांसारिक सब भोग नाशवान् हैं और इन्हीं भोगों की वासनाओं से जीव को जन्म मरण प्रवाहरूप चक्र में घूमना पड़ता है इस लिये हे मनुष्यो ! तुम सब किस इष्ट की प्राप्ति के लिये भ्रमते हो तुम्हारी सब चेष्टायें व्यर्थ हैं। सैकड़ों आशा रूप फांसों के काटने में अति चतुर इस चित्त को सावधान करो और यदि हमारा वचन श्रद्धा करने योग्य समझो तो अपने हृदय में काम क्रोधादि से भिन्न हो कर परमेश्वर की आराधना में चित्त लगाओ निश्चय है कि तुम अतीव सुख को प्राप्त होवोगे॥

जिस को जैसा प्रबल रोग हो उस के लिये वैसा ही प्रबल वैद्य और वैसी ही रोगोच्छेदन में प्रबल शक्ति रखने वाली ओषधि चाहिये। सब जगत् में फैलने वाले रात्रि के प्रबलतर अन्धकारों को हटाने के लिये एक सूर्य ही समर्थ होता है असंख्य दीपक जलने पर भी रात्रि दूर नहीं होती। वैसे ही काम क्रोधादि रूप प्रबल रात्रि के अन्धकार में फसे हुए मनुष्यों को बड़े प्रबलतर उपायों से बार २ जगाने पर कोई २ कभी २ कुछ २ जागता है। इस लिये वेदादिद्वारा मनुष्यों को जगाने चिताने का विद्वान् लोग निरन्तर प्रबल उपाय करते रहें यह परमावश्यक है॥

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायता-
मानन्दाश्रुजलं पिबन्ति शकुना निःशङ्कमङ्कशयाः।
अस्माकं तु मनोरथोपरचितप्रासादवापीतट-
क्रीडाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परिक्षीयते॥ १०१॥

जो पर्वतों की गुफा में रहकर परब्रह्म के चिन्तन में निमग्न हो कर आनन्द के आंसुओं को गिराते हैं और उन की गोद में बैठ कर शङ्कारहित पक्षी उन के आनन्दाश्रु जल को पीते हैं वे पुरुष धन्य हैं। हम लोगों ने अपने मनोरथ से बनाया जो महल और बावड़ी उस के किनारे के क्रीड़ा वन में खेल के आश्चर्य का अनुभव करते हुए हमारा तो आयु प्रतिदिन क्षीण होता है॥

यदि हमारे ध्यान में यह ठीक जच जावे कि संसार के सब अनित्य सुखों को त्याग कर जो लोग एकान्त में जितेन्द्रिय हो परमात्मा के आराधन में तत्पर होते हैं उन का जन्म वास्तव में सफल है वे कृतकार्य होने से अवश्य प्रशस्त उत्तम दशा में पहुंच जाते हैं तो हम कदापि कीचड़ में ही न फसे रहें दुर्दशाओं से निकलने का अवश्य कुछ उपाय शोचा करें। जगत् में जिन विषयों

को हम उत्तम सुखहेतु समझते हैं उन के लिये सदा उपाय करते ही हैं। इस लिये उस उत्तम दशा को सर्वांश जानने और अपनी दशा की निकृष्टता शोचने में हम सदा लगे रहैं॥

आघ्रातं मरणेन जन्म जरया विद्युच्चलं यौवनं,
सन्तोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढाङ्गनाविभ्रमैः।
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वनभुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनै-
रस्थैर्य्येण विभूतिरप्यपहृता ग्रस्तं न किं केन वा॥१०२॥

मृत्यु ने जन्म को, वृद्धावस्था ने बिजुली के समान चलायमान जवानी को-धन की इच्छाने सन्तोष को, स्त्रियों के हाव भाव कटाक्ष ने शान्ति सुख को, मत्सर (ईर्ष्या) वाले पुरुषों ने गुणों को, सर्पोंने वनभूमि को, दुर्जनों ने राजाओं को, और अनित्यता ने ऐश्वर्य्य को अपना भक्ष्य बनारक्खा है अर्थात् संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो किसी का ग्रास हुए विना बचा हो॥

जो २ वस्तु सुख के साधन वा सुख जगत् में दीखते हैं उन सब को प्रबल विरोधी नाश वा लय करने वाले भी अवश्य ही विद्यमान हैं और हमारी कुछ भी शक्ति नहीं कि हम उन विरोधियों को हटा सकें। इस लिये हम को अत्यन्त उचित और परम कर्त्तव्य यही है कि जिस की ओर ध्यान देते ही संसारी सब विपत्ति मरण भयादि सूर्योदय होते ही अन्धकार के समान एक साथ नष्ट हो जाती हैं उस एक सर्वान्तर्यामी का शरण लेना ही प्रधान समझें उस को कभी न भूलें॥

आधिव्याधिशतैर्जनस्य विविधैरारोग्यमुन्मूल्यते,
लक्ष्मीर्यत्र पतन्ति तत्र विवृतद्वाराइव व्यापदः।
जातं जातमवश्यमाशु विवशं मृत्युः करोत्यात्मसात्,
तत्किं नाम निरङ्कुशेन विधिना यन्निर्मितं सुस्थितम्॥१०३

सैकड़ों मानस और शारीरिक रोगों से मनुष्यों की नीरोगता मूल से उखाड़ डाली जाती है, जहां लक्ष्मी (धन) अधिक होती है वहां विपत्तियां मुख फाड़ २ कर गिरती हैं, जो २ जन्मता है उसे मृत्यु शीघ्र ही अपने आधीन कर लेता है ऐसा कौन वस्तु है जिस को विधाता ने सदा स्थित रहने वाला बनाया हो? अर्थात् सांसारिक सब पदार्थ नाशवान् हैं॥

यदि हम संसार के सब धनादि पदार्थों की अनित्यता को ठीक २ देखने जानने लगें तो अवश्य हमारी आसक्ति तत्परता उधर से न्यून होने लगे । कहीं काट करती हुई नदियों के दर्रा खाये हुये किनारे को जब हम ठीक २ जान लेते हैं कि यह भाग शीघ्र नदी में ढह जाने वाला है तो कदापि वहां खड़े भी नहीं होते अलग हट जाते हैं परन्तु आयु धनादि में सर्वथा आपत्तों को विपत्तियों में फंसा देखते हुए भी हम नहीं चेतते उन्हीं को सर्वोपरि समझ २ उधर ही को दिन रात भागते हैं क्या यह थोड़ा आश्चर्य है ! ॥

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः स्थीयते गर्भमध्ये,
कान्ताविश्लेषदुःखव्यतिकरविषमे यौवने विप्रयोगः ।
नारीणामप्यवज्ञा विलसति नियतं वृद्धभावोऽप्यसाधुः,
संसारे रे !मनुष्या वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किंचित् १०४

अपवित्र मल मूत्र सहित गर्भस्थान के बीच में बड़ी कठिनता से हाथ पग बांध कर जीव रहता है, यौवनावस्था में स्त्री के वियोग रूप विषम दुःख से दुःखित होता है और बुढ़ापा भी इस लिये अच्छा नहीं कि इस में स्त्रियों का अपमान सहना पड़ता है अतः हे मनुष्यो ! यदि संसार में कुछ भी सुख है तो बतलाओ क्या है ? ॥

जैसे चोरी ठगई आदि करने का अभ्यास रखने वाले यदि शोचलें कि इन कामों के करने से वर्त्तमान में भी सुख बहुत थोड़ा और सुख की अपेक्षा दिन२ भयादि के बढ़ने से दुःख सहस्त्रगुणा अधिक है तो कदापि चोरी आदि न करें परन्तु अपने अज्ञान की प्रबलता से थोड़े सुख को बहुत बड़ा मान कर दुःखों को सहते दबाते रहते हैं । वैसे ही मनुष्य अपने अज्ञान से सुख में न गिनने योग्य बहुत थोड़े सुख को अनन्त मान कर संसारी विषयों में फसता है । और जब जिस में सुख न्यून और दुःख अधिक जान लेता तब उस को अवश्य त्यागता है । इस से मोहाज्ञान प्रबल है ॥

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्द्धं गतं,
तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः ।
शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते,
जीवे वारितरङ्गचञ्चलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ॥ १०५॥

प्रथम तो मनुष्यों की आयु ही सौ वर्ष तक नियत है उस में से आधी पचास वर्ष सोने में रात को व्यतीत हो जाती है । शेष आधी के दो भाग करो । उन में से पहिला भाग बालकपन की अज्ञानता तथा बुढ़ापे में व्यतीत हो जाता है शेष चौथा भाग रोग वियोग रूप दुःख के साथ पर सेवा [नौकरीआदि] करते हुए मनुष्यों का व्यतीत होता है इस लिये जल की तरङ्ग के समान इस अतिचञ्चल जीवन में प्राणियों को सुख कहां से हो ?॥

बालकपन में सुख दुःख का विशेष ज्ञान नहीं होता वृद्धावस्था में भोग की शक्ति नहीं रहती कुछ आधा समय रात्रि में जाता है सो जाने पर संसार का प्रलयसा हो जाता है और जागरणावस्था में भी प्रायः यौवनावस्था के मनुष्यों का समय कामासक्ति आदि के मद में मग्न रहने से रात्रि के समान वेहोशी में ही कट जाता है इसी से प्रायः मनुष्य अपने हित अहित को शोचने का प्रबन्ध नहीं कर पाता । और मृत्यु आदि की बड़ी अपार घोर विपत्तियों में पड़ २ कर घबराता और पछताता है ॥

ब्रह्मज्ञानविवेकिनोऽमलधियः कुर्वन्त्यहो दुष्करं,
यन्मुञ्चन्त्युपभोगकाञ्चनधनान्येकान्ततो निःस्पृहाः ।
न प्राप्तानि पुरा न सम्प्रति न च प्राप्तो दृढप्रत्ययो,
वाञ्छामात्रपरिग्रहाण्यपि परं त्यक्तुं न शक्ता वयम् १०६

बड़े आश्चर्य्य का विषय है कि ब्रह्मज्ञान के विवेकी निर्मल बुद्धि वाले सत्पुरुष बड़ा कठिन व्रत धारण करके उपभोग भूषण, वस्त्र, चन्दन, वनिता और सुवर्ण आदि संसारसम्बन्धी सुख वा सुख के साधनों को छोड़ निस्पृह हो परमेश्वर के ध्यान में तत्पर होते हैं । हमें तो ये वस्तु न पहिले प्राप्त हुए न अब प्राप्त हैं और न आगे प्राप्त होने का दृढ़ विश्वास है । परन्तु तो भी हम ऐसे अज्ञानी हैं कि केवल उन पदार्थों के प्राप्त होने की अभिलाषा से बंध कर उन पदार्थों की अभिलाषामात्र छोड़ने में भी असमर्थ हैं ॥

यह ठीक है कि जब कोई एक सहस्र ग्राम नगरादि का राज्य सौ दोसौ ग्रामों के अधिपतित्व को छोड़ने से मिलता देखता है जब अपने निकृष्ट घरको छोड़ने से बड़ा अच्छा महल निवास के लिये मिलता देखता है तो पहिले को अवश्य छोड़ देता है । इसी प्रकार संसार का चक्रवर्ती राज्य भी जिस के सामने तृणमात्र ठहर जाता ऐसे परमार्थ सुख का जिन को ज्ञान हो जाता वा उस को

प्राप्त होने का दृढ़ विश्वास हो जाता है वे लोग संसार के बड़े २ राज्यादि वा सर्वोपरि उत्तम साधन युक्त काम सुख भोग को भी तृणमात्र समझ कर त्याग देते हैं और हम साधारण लोग छोटे २ काम सुख वा थोड़े २ धनैश्वर्य्य को भी नहीं छोड़ पाते वा आशामोदकमात्र भोग को भी नहीं त्याग सकते इस का मूल कारण अज्ञानान्धकार की अधिकता के विना और क्या है ? ॥

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती,
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो,
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् ॥ १०७ ॥

बाघिनीसी वृद्धावस्था मनुष्यों को धमकाती हुई आगे खड़ी है, सब रोग शत्रु के समान शरीर पर प्रहार (चोटें) करते हैं, जैसे फूटे घड़े से जल निकलता है वैसे ही प्रतिदिन मनुष्यों का आयु क्षीण होता जाता है । बड़े आश्चर्य्य की बात है कि मनुष्य इन सब बातों को देख कर भी अपना अहित ही करते हैं ॥

वास्तव में वेद का यह सिद्धान्त बहुत ठीक है कि "साधारण लौकिक मनुष्य देखता हुआ भी अन्धा हो जाता कुछ नहीं देखता" हम किसी को दुर्गति के साथ मरता देखते हैं इस के अमुक कर्मों का यह फल हुआ हमारी भी यही दशा होगी हमारे भी कर्म अच्छे नहीं ऐसे विचार से हृदय में धक्का लगता है जिस से कुछ सुधरने की आशा हो सकती है परन्तु वह उस को थोड़ी देर में भूल जाता और फिर वैसे ही काम करने लगता है इस आश्चर्य का कारण काम क्रोधादि का खेंचना ही है ॥

सृजति तावदशेषगुणाकरं, पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः ।
तदपि तत्क्षणभङ्गि करोति चेदहह कष्टमपण्डितता विधेः ॥१०८॥

ब्रह्मा की बड़ी मूर्खता तथा कष्ट का विषय है कि ब्रह्मदेव सम्पूर्ण गुणों के कोश एवं पृथिवी के भूषण रूप सर्वोत्तम किसी पुरुष को उत्पन्न कर के उस को क्षणभङ्गुर कर देता है ॥

संसार में कभी २ बड़े २ मर्यादापुरुषोत्तम पुरुष उत्पन्न होते जिन के विद्या और धर्मादि सम्बन्धी कूटस्थ दृढ़ विचारों से पृथिवी में सूर्यकासा प्रकाश फैल जाता उन के ऋषि महर्षि ब्रह्मर्षि आदि नाम बड़े आदर से लिये जाते हैं सह-

सैकड़ों वर्षों तक उन की कीर्त्ति जगत् में रहती है। परन्तु उन का भी शरीर कर्म-फल भोग के लिये होता शरीरों के स्वाभाविक नाशवान् होने से नष्ट हो जाता है। इस में प्रारब्ध कर्म ही मूल कारण हैं। विधाता की मूर्खता कहने से कर्मों की अनित्यता वा शरीर धारण की अनित्यता दिखाना इष्ट है॥

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-
र्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते।
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते,
हा! कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते॥१०९॥

शरीर की खाल सिकुड़ गई, चलने की शक्ति जाती रही, दांत डाढ़ उखड़ गये, कानों से कम सुनाई देने लगा, मुख से लार टपकने लगी, कुटुम्बी लोग वचन नहीं मानते और अपनी स्त्री भी रत्नं समझ सेवा नहीं करती देखो बड़ा कष्ट यह है कि बुढ़ापे में पुत्र भी शत्रु के समान वर्ताव करता है॥

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः,
क्षणं वित्तैर्हीनः क्षणमपि च सम्पूर्णविभवः।
जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव वलीमण्डिततनु,
र्नरः संसारान्ते विशति यमधानीजवनिकाम्॥११०॥

परमार्थ ज्ञान के द्वारा अपना कल्याण चाहने वाला मनुष्य संसार के अन्य दुःखों के समान एक वृद्धावस्था के दुःख को भी छोटा न समझे किन्तु अन्यों के साथ बुढ़ापे के सब दुःखों पर भी ध्यान दे २ कर संसार से उदासीनता बढ़ाता रहे।

यह मनुष्य क्षण में बालक रूप हो कर क्षण भर में ही विषयों में निपुण जवान होता है क्षण में ही दरिद्र और थोड़े ही काल में सम्पूर्ण विभव वाला बन बैठता पीछे वृद्धावस्था से जीर्ण अङ्ग वाला तथा सिकुड़े चमड़े वाला पुरुष नट के समान नाना रूपों को धारण करके मृत्यु समय यमराज की पुरी रूप परदे में छिप जाता है॥

मनुष्य प्रायः कहता और मानता है कि मेरे देखते ही देखते थोड़े समय में अनेक अमुक २ मनुष्यादि प्राणी उत्पन्न हो २ संसार के सब काम कर २ मर गये यह सब समय शीघ्र कट गया सो वास्तव में काल की अनन्तता की ओर

यह सब समय शीघ्र कट गया सो वास्तव में काल की अनन्तता की ओर ध्यान देवें तो हमारा एक सहस्र वर्ष जीवन भी क्षण मात्र है। ठीक २ ध्यान देकर शोचें तो जन्म से मरणपर्यंत की लेले देदे चल २ भाग २ खाव २ खेंचतान आदि बहुत थोड़े काल में हो कर खेलसा विगड़ जाता है॥

अहौ वा हारे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा,
मणौ वा लोष्टे [illegible] बलवति रिपौ वा सुहृदि वा।
तृणे वा स्त्रैणे [illegible] मम समदृशो यान्तु दिवसाः,
क्वचित्पुण्येऽरण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः॥ १११॥

सर्प वा हार, पुष्प रचित शय्या वा पत्थर की चट्टान, मणि वा मिट्टी का ढेला और तिनका वा स्त्री सम्बन्धी विषय अथवा सन्तान में समदर्शी होकर कहीं पवित्र वन में शिव शिव शिव [illegible]पते मेरे दिन व्यतीत हों यही चाहता हूं॥

श्रीभीमसेनशिष्येण, गुरुं [illegible]त्वा परात्परम्।
वैराग्यशतकव्याख्या, लोकवा[illegible] कृता शुभा॥
रामबाणाङ्कचन्द्रेऽब्दे माघमासेऽ[illegible]ते दले।
बुधवारे द्वितीयस्यां टीका पूर्तिमगा[illegible]यम्॥

परमार्थ सुख भोग के अभिलाषी और महादुःखों [illegible] बचने की आशा वाले को मन में सदा यह संकल्प कूट २ दृढ़ बैठाना चाहिये [illegible] संसारी हानि लाभ मानापमानादि में समदृष्टि रक्खूं विशेष हर्ष शोक मुझे [illegible] सतावें जितेन्द्रिय हो के शुद्ध एकान्त निर्जन देश में परमेश्वर में मन वाणी लग[illegible] हुए मेरा समय कटे ऐसा उद्योग सदा शोचे और परमात्मा से प्रार्थना करते रहे॥

इति वैराग्यशतकं समाप्तम्॥

पुस्तकों की सूची ॥

यमयमीसूक्तम् =) प्रवन्थार्कोदय ।-) नया छपा है आर्य्य धर्म की शिक्षा के साथ मिडिलक्लास की परीक्षा देने वाले छात्रों के ... खाता है ॥ आयुर्वेदशब्दार्णव (कोष) ॥=) मनु ... लिखना वि- क ... =)॥ पुस्तक रायल पुष्ट कागज़ में ३६ ... १॥) छा- ... संस्कृत भाष्य =) केन ।) कठ ।।।) ... उपनि० तैत्तिरीय ।।।) इन ७ उपनिषदों पर सरल संस्कृत ... ।) माण्डूक्य =) लिखी गयी है कि जो कोई एकबार भी इस के ... ी भाषा में टीका है उस का चित्त अवश्य गढ़ जाता है । सातों ... (उदाहरण) मात्र देखता ... लेने वालों को ३) ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ये छः उपनिषद् छटे गुटकाकार में बहुत शुद्ध मूल भी छपे हैं मूल्य =) तैत्तिरीय, ऐतरेय, ... श्वतर, और मैत्र्युपनिषद् ये चार उपनिषद् द्वितीय गुटका में =) गणरत्न ... दधिः १॥) आर्य्यसिद्धान्त ७ भाग ८४ अङ्क एक साथ लेने पर ४।=) और फुट ... लेने पर प्रति भाग ।॥) ऐतिहासिक निरीक्षण =) ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दूपर ... प्रथमोंशः -)॥ तथा द्वितीयोंशः -)।।। विवाहव्यवस्था =) तीर्थविषय (... द तीर्थ क्या हैं) -)॥ सद्विचारनिर्णय -) ब्राह्ममतपरीक्षा =) अष्टाध्यायी ... =) न्यायदर्शन मूल सूत्रपाठ =) देवनागरी वर्णमाला)। यज्ञोपवीतशङ्का ... धं -) संस्कृत का प्रथम पु० पांचवीं वार छपा)।।। द्वितीय तीसरी वार छप ... तृतीय फिर से छपा =)।।। भर्तृहरिनीतिशतक भाषा टीका ≡) चाणक्य ... मूल)॥ बालचन्द्रिका (बालकों के लिये व्याकरण) -) गणितारम्भ (बालके ... लिये गणित) -)॥ अङ्कगणितार्य्यमा ≡)॥ विदुरनीति मूल =) जीवशान्ति ... -) पाखण्डमतकुठार (कबीरमतख०) =) जीवनयात्रा(चार आश्रम) ≡) नीति ... -)॥ हितशिक्षा (नामानुकूलगुण) -)॥ गीताभाष्य २।) हिन्दी का प्रथम पुस्तक ... द्वितीयपुस्तक पं० रमादत्त कृत ≡) शास्त्रार्थ खुर्जा -) शास्त्रार्थ किराणा ... पुस्तकें-भजनामृतसरोवर =) सत्यसङ्गीत)। सदुपदेश)। भज- नेन्दु (क ... ग, भजनादि) -) वनिताविनोद (स्त्रियों के गीत) =) सङ्गीतर- त्नाकर ... द्धमती (मुं० रोशनलाल बैरिस्टर एटला रचित) ।) सभाप्रसन्न ।) ... त्र नाविलप्रथम भाग ।।।) बाल्यविवाहनाटक -)॥ शिल्पसङ्ग्रह ।-) ... दर्पण =) कर्मवर्णन)॥ स्वामीजी का स्वमन्तव्यामन्तव्य)॥ नियमोप- ... आर्यसमाज के)। आरती आधा पैसा आर्यसमाज के नियम ≡)। सैकड़ा